परिमल



- श्री योगेश्वर

NOTICE

*



E-Book

Title : परिमल
Language : Hindi
Version : 1.0
Pages : 104
Created : May 21, 2010.

*

NOTE

This e-book is a manifestation of our humble effort to present Shri Yogeshwarji's literary work in digital format. Due care has been taken in preparing the material of this e-book from its original print version (मुद्रक: गौरीशंकर प्रेस, मध्यमेश्वर, वाराणसी, प्रथम संस्करण, संवत २०२७). However, if you find any error or omissions, please let us know. We welcome your comments.

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

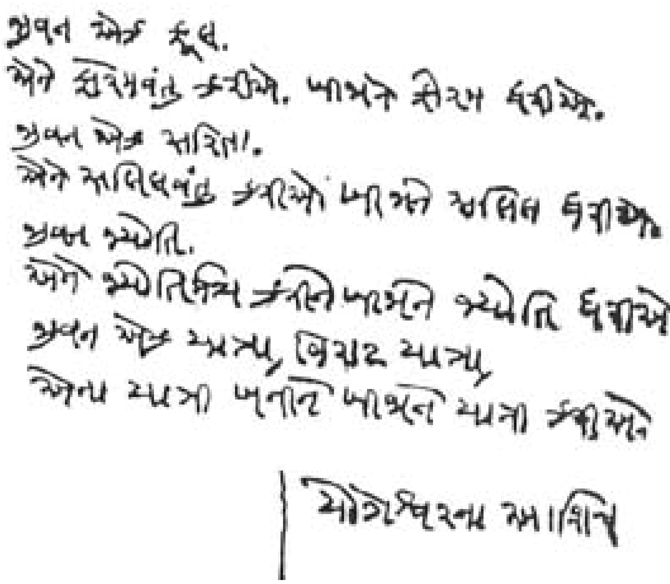
श्री योगेश्वरजी

(१५ अगस्त, १९२१ – १८ मार्च, १९८४)



"मनुष्य जीवन का एकमात्र ध्येय परमात्मा की प्राप्ति है ।"

श्री योगेश्वरजी के हस्ताक्षर



प्रस्तावना

दुनिया की दशा करुण है । साथ ही, वह विस्फोटक भी है । उसमें रहनेवाले मानव के मन में भय है, भेद है और अशान्ति है । सुख तथा शान्ति से सम्पन्न सृष्टि में श्वास लेनेकी उसकी अभिलाषा आज भी अपूर्ण रही है । कुछ शक्तियाँ उस अभिलाषा को सफल करने के लिए परिश्रम कर रही हैं, और अन्य कुछ शक्तियाँ उसके विरुद्ध भी वर्त रही है । इस प्रकार शुभ और अशुभ, मंगल और अमंगल शक्तियाँ संसार में काम कर रही हैं ।

ऐसे समय में लेखक अथवा कवि का धर्म शुभ और मंगल शक्तियों अथवा तत्वों का साथ या सहयोग देने का ही हो सकता है, यह स्पष्ट है । कविता-साहित्य इसी प्रकार मानव के मंगल का महामूल्यवान् साधन हो सकता है । यह कोई सामान्य साधन नहीं, परन्तु हजारों को प्रेरणा पहुँचानेवाला, प्रकाश प्रदान करनेवाला अत्यंत आवश्यक और आशीर्वादरुप साधन है । इस बात को समझकर, कवि अथवा साहित्यकार को चाहिये कि वे जो कुछ भी लिखें, विवेकयुक्त होकर लिखें, उसका प्रत्यक्ष प्रकाशन भी विवेकयुक्त रहकर करें, जिसके परिणामस्वरूप वे समाज के परम मंगल में अपना नम्र किन्तु महत्व का योग प्रदान कर सकें ।

इस विचारधारा के अनुगत रहकर मैं अपने इस संग्रह को साहित्यरसिक जनता के समक्ष उपस्थित कर रहा हूँ । मुझे आशा है कि यह संग्रह सबको रुचिकर होगा । इसके लोकप्रिय होने पर ही मेरा लेखनश्रम सफल बनेगा ।

इस संग्रह की पाण्डुलिपि प्रस्तुत करने में सहायता प्रदान करने के लिये श्रीमती रजनी को मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ ।

- योगेश्वर

* * *

<u>अनुक्रम</u>

* * * * *

१. संग्रह का समर्पण

सृष्टि के इस सुंदर समारंभ में आपने मुझे अपने प्रेमी होने, गीत गाने और अपनी मंगलमय महिमा को प्रसारित करने का महान कार्य सौंपा है, और उस कार्य को मैं अपनी समस्त शक्ति तथा पर्याप्त प्रामाणिकता से कर रहा हूँ ।

मेरे कार्य में परिपूर्णता है, ऐसा मैं नहीं कहता । ऐसा दावा मैंने कभी नहीं किया । उसके अंदर त्रुटि रही होगी और रह जाना स्वाभाविक है, परन्तु जो कर्तव्य मेरे जिम्मे आया है, उसे मैंने अपनी समग्र शक्ति, संपूर्ण बुद्धि और सर्वोत्तम स्नेहवृत्ति से यथाशक्य संपूर्णतया पूर्ण करने का प्रयास किया है, यह निर्विवाद है ।

मेरे कार्य की सफलता का सुयश आपको ही है; क्योंकि आपकी ही प्रेरणा से उसका आरंभ हुआ है, आपकी ही शक्ति से उसका पोषण हुआ है, और आपके सर्वश्रेष्ठ स्वरूप में समाविष्ट होने में ही उसकी पूर्णाहुति है । वह आपका है और आपके ही लिये है । और मेरे पास ऐसा क्या है जो आपके लिये न हो ? मेरा समस्त जीवन ही क्या आपके लिये नहीं ?

उस जीवन की प्रतिध्वनि अथवा परिमल-जैसे इस संग्रह को आपकी सेवा में वैसे ही समर्पित कर रहा हूँ, जैसे उषा अपना सर्वस्व सूर्य के श्रीचरणों में समर्पित करती है ।

* * * * *

२. प्रेम की कल्पना

मेरे प्राण में पडे हुए अपने प्रेमपारावार की कल्पना भी कर सकते हो ? उसकी किसके साथ तुलना करुँ, यह सर्वथा मेरी समझ में नहीं आता ।

पृथ्वी के तीन चौथाई हिस्से में समुद्र है, किन्तु वह खारा है । मेरा प्रेम तो मेरे अणु-परमाणु में, जीवन के प्रत्येक अंश में प्रसर चुका है और मधु से भी मधुर है । उसमें ज्वार भले ही आया करे, भाटा उसे कभी नहीं स्पर्श करता ।

सरिता का सलील है तो सुस्वादु, किन्तु सीमित है । उसकी मेरे इस असीम अनुराग-सागर के साथ किस प्रकार तुलना करूँ ? सरिता तो वर्षा से ही मदोन्मत्त बनती है, जब कि मेरा अनुराग आठों प्रहर अनवरत एक-सरीखा लहराता रहता है ।

पावन पुष्प और परिमल भी सदा-सर्वदा प्रफुल्ल कहाँ रहते है ? प्रकृति की गोद में विहरनेवाले विहंग भी स्थायी कल्लोल कहाँ कर सकते हैं ? और प्रकृति स्वयं भी एक-सरीखी सुंदर, सुखमय और स्वर्गीय कहाँ रह सकती है ? पुष्प प्रकट होकर मुरझाते हैं, विहंगो के कलरव भी शान्त होते हैं, और परिवर्तनशील प्रकृति स्वयं भी प्रतिपल पलटती रहती है । अतः मेरे स्नेह की उनके साथ भी किस प्रकार तुलना करुँ ?

वास्तव में कहूँ तो उसका कहीं कोई साम्य ही नहीं है । वह विलक्षण, असाधारण तथा अनन्य है और अनन्य रहने में ही उसकी विशेषता है । हाँ, वह सिर्फ आप और आपके ही लिये है । वह सर्वथा अनुपम रहे, कवि की क्रान्तदर्शी दृष्टि से दूर या कल्पनातीत रहे, इसी में उसकी विशेषता अथवा अलौकिकता है ।

* * * * *

3. तो भी क्या ?

वे तुझसे मिलने न आयें तो भी क्या ? तुझे निराश होने का कारण नहीं है । समय आने पर वे ही तुझसे मिलने का मनोरथ करेंगे, स्वयं उत्सुक बनेंगे ।

वे तेरी ओर न देखें तो भी क्या ? तुझे विषादयुक्त बनने का कोई कारण नहीं । समय आने पर वे ही तेरे दर्शन के लिये और तुझे आँख भरकर देखने के लिये तत्पर होंगे; उसमें अपना सौभाग्य समझेंगे।

वे तेरी निंदा करें और तेरा तिरस्कार करें तो भी क्या ? समय आने पर वे ही तेरी प्रशस्ति करेंगे, तुझे सम्मानित करने के लिये खुद आयेंगे; उसे अपने जीवन का आनंद मानेंगे ।

वे तेरी बात न सुनें, तेरी तरफ धूल उडायें तो भी क्या ? समय आने पर वे तेरे पथप्रदर्शन के लिये लालायित होंगे, तेरी चरणरज को पावन मानेंगे ।

और इनमें से कुछ भी न हो तो भी क्या ?



* * * * *

४. कवि ने गाया

प्रभात के प्रथम प्रहर में, पर्वत की पंक्ति के पीछे से प्रकटित प्रभाकर को देख प्रवासी का प्राण प्रफुल्ल हो उठा । फुलवाडी के फोरमवाले फूल फोरम को फैलाते खिल उठे । सरिता के सलिल सुधा-मधुर बनकर बहने लगे ।

उस समय कवि ने कविता करते गाया, ओ प्रभाकरों के प्रभाकर ! अवनि की आत्मा को आलोकित करके अवनविन आह्लाद अर्पित करने का असाधारण अवसर मुझको दे दे ! उसके लिए मेरे जीवन की फुलवाड़ी में फोरमभरे फूलों की सृष्टि कर दे; और आत्मा को अमृत के आस्वाद का ऐसा आनन्द प्रदान कर दे, जिससे वह तो कृतार्थ बने ही किन्तु अन्य अनेक को भी कृतार्थता प्रदान करे ।

प्रभात के प्रथम प्रहर में, पर्वत की पंक्ति के पृष्ठभाग से प्रकटित प्रभाकर को देख प्रवासी का प्राण प्रफुल्लित हो उठा; उस समय कवि की वीणा पर गीत गुंजरित हो उठा !

* * * * *

५. भ्रमर और पुष्प

फूलवाड़ी में सौरभ का आस्वाद लेते-लेते, एक फूल से दूसरे फूल पर उड़नेवाले भ्रमर से एक सुंदर सुवासित सुमन ने कहा, 'तू चंचल है, एक जगह स्थिर नहीं रह पाता । किसीसे तो ममता कर, किसीके कलेजे में तो कैदी बन, किसीके पीछे तो पागल बन । तू सचमुच चंचल है ।'

भ्रमर ने कहा, 'समस्त जगत् चंचल है, परिवर्तनशील है । उसमें किसकी माया और किससे ममता ? यह ज्ञान प्राप्त होने के बाद मैं एक जगह स्थिरता से नहीं बैठता, कहीं कैदी नहीं बनता । मुझे नहीं समझनेवाले चंचल कहते हैं, किन्तु रसिकता को लेकर फिरना और कैदी न बनना, इसमें कुछ कम मनोबल की आवश्यकता नहीं पड़ती ।'

पुष्प का प्रेमभाव उस भ्रमर के लिए बढ़ गया । उसकी दृष्टि ही बदल गयी ।

* * * * *

६. धरती की गद्दी

कवियों ने धरती की महिमा गायी, और प्रसंशकों ने उसकी प्रशस्ति की, उसको देखकर आकाशमंडल के एक तारक के मन में आया कि मैं भी धरती बनूँ तो कैसा अच्छा, मुझे तो कोई पूछता ही नहीं, मेरी तो कोई पहचान ही नहीं ।

अपनी भावना उसने ब्रह्मा के समक्ष व्यक्त की; और ब्रह्मा ने उसे कुछ काल के लिए धरती की गद्दी दे दी ।

परंतु स्वल्प समय में ही उसकी अस्वस्थता एवं पीड़ा का अन्त न रहा । उसने अनुभव किया कि यह गद्दी सुख-शांति की नहीं । उसे प्रचंड पर्वतों का बोझ सहना था । सुदुस्तर विशालकाय समुद्रों को संयम में रखना था । ठंडी, गर्मी, भूकंप, वर्षा और तूफानों का मुकाबला करना था, और प्रहार, पाप तथा अपवित्रता के बीच भी मूक रूप से श्वास लेना था । पूजा और प्रशस्ति करनेवाले तो थोड़े ही थे ।

अशांति में शांति रखनेवाली उस संयमी धरती के लिये उसका आदरभाव बढ़ गया । उसका अभिवादन कर और उसकी गद्दी उसे सुपुर्द कर, ब्रह्मा की अनुज्ञा लेकर वह अपने मूल स्थान में वापस लौट गया ।

* * * * *

७. कमल और कवि

शरद की एक सुनहरी सुबह, मैंने उस एकान्त उपवन की मुलाकात ली । उपवन के एक तरफ सुंदर सरोवर था और उसमें एक आह्लादक चित्ताकर्षक कमल खिला हुआ था । उसकी श्री और सरसता से मेरा हृदय नाचने लगा ।

स्वल्प समय के बाद मैंने उससे कहा, 'प्यारे पद्म ! इतना सुंदर होने के बावजूद भी तू इस एकान्त उपवन में क्यों पड़ा है ? तेरा स्थान तो किसी रमणीय राजप्रासाद में अथवा दैवी देवमंदिर में ही हो सकता है ।'

कमल ने कहा, 'कवि ! तेरी बात यथार्थ होगी; किन्तु अकेले, आश्रयहीन और अनाथ को आनंद प्रदान करनेवाला कोई तो चाहिये ? जीवन का सच्चा संतोष मुझे इसी में मिलता है – इस सेवा में । तदुपरांत तेरे-जैसे कोमल हृदय के कोई कवि कभी-कभी इस पगदंडी पर आ पहूँचते हैं । मुझे देखकर वे कविता करते हैं । इससे मुझे अपार, अलौकिक और अवर्णनीय आनंदानुभव होता है ।'

* * * * *

८. खबर नहीं, इतना ही !

निराश किस लिये होता है ? तुझे जो निराशा होती है, उसी में आशा का अवनवीन बीज छूपा हुआ है । तुझे उसकी खबर नहीं इतना ही ! निराश किस लिये होता है ?

चिंतित क्यों बनता है ? तुझे जो चिंता का कारण लगता है, उसीमें तेरे जीवन की निश्चिंतता का साम्राज्य समाया हुआ है । तुझे उसका पता नहीं इतना ही ! चिंतातुर क्यों बनता है ?

अश्रु किस कारण बहाता है ? तुझे जो अश्रुपात का कारण लगता है, उसीमें तेरे अलौकिक अवर्णनीय आनंद का उद्भव-स्थान रहा है । तुझे उसकी खबर नहीं इतना ही ! अश्रु किसके लिये बहाता है ?

पराजय की पीड़ा में क्यों कराहता है ? तुझे जो पराजय लगती है, उसीमें तेरी विजय की निशानी रही है । तुझे उसका पता नहीं इतना ही ! पराजय की पीड़ा में क्यों कराहता है ?

* * * * *

९. यात्रा की सार्थकता

पृथ्वी के इस पुण्यप्रवास के आरंभ में, पथ पर प्रस्थान करते ही, मैंने अनेक नवीन वस्तुओं का दर्शन किया । और प्रवास के बढ़ने पर, ज्यों-ज्यों पंथ कटता गया, मुझे आनंददायक, अलौकिक, आश्चर्यकारक अन्य अनेक व्यक्तियों और वस्तुओं का सुखद समागम प्राप्त हुआ ।

उन सबकी वजह से मेरी महीमंडल की महायात्रा मधुमयी बनी तथा सफल हुई । जीवन मेरे लिये रसमय और अनोखा बन गया; जीने लायक हुआ ।

किन्तु जिससे वह कृतार्थ हो सका है, सुधा-समान बना है, और जिसके बिना उसकी कीमत कौड़ी की भी नहीं होती, वो तो आप हैं । आपका स्नेह और संसर्ग मेरे जीवन में स्वर्णाक्षरों से अंकित हो चुका है; और अनेक बार की तरह आज भी कहने दो कि उसकी वजह से और केवल उसीकी वजह से मेरा जीवन जीनेलायक हुआ है, मेरी यात्रा सार्थक हुई है ।

* * * * *

१०. पुनीत प्रार्थना

मेरे जीवन से अन्य सब कुछ चला गया है, किन्तु आपके सनातन स्नेह-संबंध को बनाये रखना, हरहमेश रखना, ऐसी मेरी प्रार्थना है । आजके पुनीत प्रभात में इतनी प्रार्थना है ।

तमोमय अंतर को उससे प्रकाश मिलेगा, अशांत हृदय को शांति प्राप्त होगी और एकाकी जीवन मधुमय तथा आनंदमय बनेगा । जैसे मुरझानेवाली वनराजि सलिल के स्वादु, सुधामय सिंचन से खिल उठती और जीवन पाती है, वैसे ही मेरा सब कुछ आपके स्नेह-सिंचन से खिल उठेगा, अनोखा बनेगा ।

मेरे जीवन से अन्य सब कुछ चला गया है, किन्तु आपका अमृतमय अलौकिक आसन उसमें सदा बना रहे, ऐसी मेरी प्रार्थना है । आजके पुनीत प्रभात में इतनी प्रार्थना है ।

* * * * *

११. आपकी संनिधि में

आपकी संनिधि में मेरी अवस्था कैसी होती है, आपको पता है ?

जिस प्रकार चंद्र को देखकर शांत किन्तु स्नेह से भरे सागर का अंतर और अणु-अणु उछलने लगता है और उसकी मंत्रमुग्धता का अन्त नहीं रहता, उसी प्रकार मेरा सब कुछ आपको देखकर हिल उठता है, नर्तन करने और उछलने लगता है।

निर्वात मंदिर में जलनेवाली दीपक की ज्योति की तरह, मेरे प्राण की प्रेमिल ज्योति अखंड रूप से जला करती है । वह आपका ही ध्यान धरती है; आपके विश्वमोहन रूप को ही देखा करती है । मेरी समस्त चंचलता चली जाती है, अस्थिरता का अंत आता है, अशांति शान्त होती है ।

ऐसा है आपके प्रेम का, आपकी प्रत्यक्षता का प्रभाव । स्वर्ग, वैकुंठ तथा मुक्ति – मुझे दूर, सुदूर नहीं लगते अथवा कल्पनामय नहीं दीखते । मेरे लिये वे इसी संसार में साकार हो जाते हैं । अथवा कहो कि इससे भी अलौकिक, अकल्पनीय, अनिर्वचनीय, अमृतमय, आनंददायक लोक का निर्माण होता है ।

* * * * *



१२. अपरिवर्तनशील अनुराग

इस अपरिवर्तनशील पृथ्वी में, पल-पल पद-पद पर परिवर्तन हो रहा है । जो आज दीखता है, कल वह उसी अवस्था में नहीं रहता, और जो कल था, सो आज उसी स्वरूप में नहीं दीखता । उषा, संध्या, सूर्य, चंद्र, तारे और अविकारी-जैसे आकाश में भी परिवर्तन-पर-परिवर्तन होते रहते हैं ।

सरोवर में सोलह कला से खिल उठे कमल शाम होने पर ऐसे कलामय कहाँ रह सकेंगे ? सौरभ से भरे सुमन भी आखिर मुरझा जायेंगे; अस्त होनेवाले यौवन की तरह इस वसंत का भी विलय होगा और पतझड़ का प्रारंभ । मदोन्मत्त होकर सिन्धु की दिशा में अभिसरण करनेवाली सरिता भी आखिर विरह की वेदना से व्यथित होकर सूख जायेगी ।

परन्तु हमारे स्नेह-संबंध में वह नियम लागू नहीं होगा । वह तो ऐसा ही रहेगा, शाश्वत समय के लिये – अनंत काल के लिये ऐसा ही अखंड रहेगा; सदैव स्मित करेगा ।

इस परिवर्तनशील पृथ्वी में पल-पल पद-पद पर परिवर्तन हो रहा है, विनाश का तांडव नृत्य हो रहा है, किन्तु अपने अमृतमय अनुराग के संबंध में ऐसा नहीं होगा; उसे भाटा नहीं लगेगा – वह कभी भी, किसी कारण भी मृतःप्राय नहीं होगा ।

* * * * *

१३. ज्योतिषी और दार्शनिक

सागर के विशाल तट पर महल-जैसे मकान में एक दार्शनिक रहता था । भूत-भविष्य को पूर्ण रूप से देखने का दावा करनेवाले एक ज्योतिषी ने उससे मिलने की आज्ञा लेकर उससे कहा, ‘आपकी इच्छा हो तो मैं आपके बीते हुए और आनेवाले जीवन का नक्शा बना सकता हूँ; आपके भूत और भावी प्रसंगो के बारे में बता सकता हूँ ।’

दार्शनिक ने कहा, ‘तुम्हारी पद्धति मुझे पसंद नहीं । तुम भूत-भविष्य के आसपास भटकते रहते हो और आशा और चिंता, हर्ष और शोक की सृष्टि करते हो, जब कि मैं वर्तमान के रस को यथाशक्ति लूटता हूँ और उसीमें संतुष्ट रहता हूँ । इसीलिये अब तक मैंने किसी ज्योतिषी से मुलाकात नहीं की ।’

यह स्पष्टीकरण ज्योतिषी के लिए एकदम अनोखा था । दार्शनिक की वंदना कर वह शांति से विदा हुआ ।

* * * * *

१४. अभीप्सा

जो कुछ होता है, सो आपकी इच्छा अथवा योजना के अनुसार होता रहता है । जो कुछ होनेवाला है, सो भी उसी प्रकार होता रहेगा । इसीलिये मैंने उसकी चिंता करना छोड़ दिया है । आप जो करते हो अथवा करोगे सो मेरे मंगल के लिये ही है और होगा, ऐसा मेरा विश्वास है ।

जड़ जीव आपकी इच्छा अथवा योजना को नहीं जान पाता । किन्तु आपकी कृपा और अपार कृपा है कि आप मुझे उसके विषय में पहले से ही बता देते हो । भूत, वर्तमान और भावि प्रसंगो के पर्दे आप मेरे समक्ष खुले रखते हो, और अपनी योजना मुझे पहले ही समझा देते हो ।

इसीलिये मेरी समस्त भ्रांति मिट गयी है, चिन्ता या भीति भी हट गयी है । आपने जो सोचा है, वही होनेवाला है और होनेवाला ही है उसमें मुझे लेशमात्र भी शंका नहीं । अतः मैं आपके विधान में प्रसन्न रहता हूँ, और आप जो करते और योजना बनाते हो, उसे तटस्थ रूप से देखा करता हूँ ।

आपकी इच्छा मेरे जीवन में विजयी हो, यही मेरी अभीप्सा है । आपकी इच्छा ही सर्वोपरि, सत्य, यशस्वी हो !



* * * * *

१५. जीवन के सर्वस्व

आप मेरे जीवन के ध्रुवपद बनकर बैठ गये हो । मेरा केवल कथन ही नहीं, समस्त जीवन आपके आसपास फिरता रहता है, आपके आधार पर टिका है, और आपके अंदर से अनंत, असीम शक्ति और प्रेरणा की प्राप्ति करता रहता है । ऐसा अखंड, अनंत, अनोखा अथवा अवर्णनीय है अपना अनुराग । संसार में इसकी तुलना और किसीसे नहीं हो सकती ।

सागर का संगीत किसी प्रकार और किसी समय शान्त नहीं होता । मेरा स्नेह-संगीत भी वैसा ही सनातन है । इसमें ज्वार पर ज्वार उठा करता है, किन्तु भाटा स्वप्न में भी नहीं पैदा होता ।

मेरे स्वर और ताल, भाव, अर्थ और अलंकार केवल आप ही हो । मेरा कथन ही नहीं, सारा जीवन आपके आसपास फिरता है, आपके आधार से टिका है, और आपके अंदर से अनंत अथवा असीम शक्ति तथा प्रेरणा की प्राप्ति करता है ।

* * * * *

१६. आश्चर्य

जिसे तेरे लिये इतना असीम स्नेह है, अपार अनुराग है, उसीसे तू दूर रहता है, इसके बड़ा आश्चर्य और क्या हो सकता है ?

जो तुझसे मिलने के लिये मनोरथ करता है और तेरी संगति में शाश्वत श्वास लेने के स्वप्न देखा करता है; जो तेरी परिपूर्ण प्रसन्नता की प्राप्ति की योजना बनाता है, और तेरे अमृत आलिंगन में एक हो जाने के लिये अश्रु बहाता आतुर रहता है; उसकी तुझे कोई फिक्र ही नहीं, यह कितना आश्चर्यजनक है ?

जो तेरे पीछे पागल है; जिसका दीवाना दिल दिलरूबा बनकर तेरी दैवी ध्वनि से द्रवीभूत होता है; जिसके हृदय और रोम-रोम में एक तेरे ही राग की रागिनी उठ रही है, प्राण के पावन प्रदेश से तेरा ही प्रेम-प्रवाह प्रकट होता है, और जिसको तेरे सिवा अन्य कुछ भी श्रेय और प्रेय नहीं है, उसके लिये तेरे प्राण नहीं पिघलते – क्या यह एक महान आश्चर्य, अरे, आश्चर्यो का भी परम आश्चर्य नहीं है ?

उठ मेरे प्राणाधार, तू अन्य किसीसे द्रवीभूत न बन अथवा न पिघल, परंतु उस प्रेमसिंधु के प्रेम से तो पिघल । इसके बिना तेरा महत्व क्या रहेगा ? तुझे स्नेह और सहानुभूति का सिन्धु भी कौन कहेगा ?

* * * * *

१७. दरिया-जैसा दिल

दिल छोटा है लेकिन है दरिया-जैसा । इसकी गहराई बहुत है और है भी अत्यंत विशाल । भावों का ज्वार इसमें उठा करता है, अहर्निश उठा करता है; और शान्त किन्तु समधुर, सनातन सुखदायक संगीत-स्वर में वह अपने प्राण को अभिव्यक्त करता रहता है ।

उपर-उपर से देखनेवालों को इसमें सलिल के सिवा अन्य कुछ भी नहीं दीखता । किन्तु इसके अंदर न जाने कितने मोती भरे पडे है । प्रेरणा के अमर अमृतदान से न जाने इसने कितनों को जीवन प्रदान किया है ।

दिल छोटा है लेकिन है दरिया-जैसा । असीम, अमाप, अगाध – दैवी दरिया-जैसा ।

* * * * *

१८. किस धन्य घड़ी में !

किस धन्य घड़ी में, किस पावन पल में मेरे दिलको आपने तैयार किया, उसका मुझे पता नहीं ! किस धन्य घड़ी में, किस पावन पल में !

जगत में जिसकी जोड़ न मिले ऐसा अनोखा, अनुपम है यह दिल । इसका अनुराग और इसकी आकांक्षा, इसकी निर्मलता और निष्ठा – सबकुछ बेजोड़ है । और उन सबसे भी बढ़कर इसके अंदर अंकित हुई आपकी मंगलमयी, मनहर, मन्मथ को मात करनेवाली मूर्ति; उससे इसकी आभा अनेक गुना बढ़ गयी है ।

दूसरे दिल अनेक होंगे, और हैं । परन्तु इसकी असाधारणता उसीमें है कि यह 'अपना' मिट गया है और 'आपका' हो गया है । आपकी ही संपत्ति, आपका ही महिमामण्डित मधुमय मंदिर एवं आपका ही आश्रयस्थान बना है ।

किस धन्य धड़ी में, किस पावन पल में, मेरे दिल को आपने तैयार किया है, मुझे उसका पता नहीं । किस धन्य घड़ी में, किस पावन पल में !

* * * * *

१९. कैसे चलेगा ?

दुःख और दर्द के दावानल से विचलित होकर डर जायेगा तो कैसे चलेगा ? दुःख और दर्द तो इस मार्ग में आयेंगे ही ।

पीडा, परिताप, पुकार और प्रतीक्षा से हिम्मत हार जायेगा तो कैसे चलेगा ? उन सबका अस्तित्व इस मार्ग में रहेगा ही ।

अश्रु, आह, आपत्ति, अवमान और अनिद्रा से बेचैन बन जायेगा, पथ को त्याग देगा तो कैसे चलेगा ? उसके बिना इस पथ पर आगे नहीं बढ़ा जायेगा ।

निराशा से हताश और चिंता से चंचल, चिंतातुर, चलित-चित्त बनेगा तो कैसे चलेगा ? निश्चिंतता और आशा का अलौकिक शांतिसंपन्न शिखर इसके बिना सर नहीं होगा ।

* * * * *

२०. गंगा का गुमान

गंगा के गहरे पानी में एक देवदार का लकड़ा तैर रहा था । पर्वतीय लोगों ने उसे तोड़कर और नया आकार प्रदान कर बहा दिया था । उसे देखने के लिये गंगा-तटवर्ती गाँवो के लोग इकट्ठे होते थे ।

असंख्य अवरोध और आपत्तियों के बाद, एक धन्य दिन, एक धन्य क्षण, वह लकड़ा किनारे आ पहुँचा । उसका श्रम पूरा हुआ ।

उसे देखकर गंगा आनंद से भर गयी और कहने लगी, 'मेरे बिना तेरा उद्धार इस भीषण, पीड़ायुक्त प्रदेश में से शायद ही कोई कर पाता । मीलों के प्रवास के बाद मैंने तुझे मुक्ति का महान आनंद अर्पित किया, इसके लिये तुझे मेरा अनेक बार और अंतःकरण से आभार मानना चाहिए ।'

लकड़े ने स्मित के साथ उत्तर दिया, 'माता ! तेरी सर्वोदयता तथा सहायता के लिये तेरा अवश्य आभार मानता हूँ । परन्तु मैंने तुझे उद्धार करने का अवसर प्रदान किया, वह क्या कम है ? इसके बिना आनन्द की ऐसी अभिव्यक्ति तुमसे शायद ही हो पाती !'

गंगा का गुमान चुरचुर हो गया !

* * * * *

२१. शबरी की स्मृति

अपने प्राणप्यारे, हृदयाभिराम राम के सत्कार के लिये शबरी रोज सुबह वन के बेरों को बीन लाती और उन्हें चखकर उनमें से अत्यंत मीठे-मीठे बेरों का संग्रह करती ।

संग्रह की वह स्नेह से भरी साधना, एक दिन, दो दिन, चार दिन या दस दिन नहीं, किन्तु असंख्य दिनों तक चलती रही । परन्तु पवित्र प्रेम से प्रेरित होकर की जानेवाली क्रिया कभी निष्फल जाती है क्या ? शबरी की साधना भी एक असाधारण दिव्य दिन को फलीभूत हुई । श्रीराम उसके अतिथि बने, और सस्नेह संगृहीत बेरों के आस्वाद से आनन्दविभोर हो गये ।

शबरी के उस स्नेह से भी अधिक उत्कट स्नेह, लगन और भावना से दिवसों, महीनों और वर्षों से संगृहीत मेरे गीत, आपके स्नेह से भरे सत्कार को पाकर प्रसन्न बनने की प्रतीक्षा कर रहे हैं । उनके अमृतमय, आरामप्रदायक आस्वाद से आप तो पुलकित बनेंगे ही, परंतु अपने प्रेमास्पद (आप) को पाकर वे भी प्रसन्नता पायेंगे और कृतार्थ बनेंगे, इसमें संशय नहीं ।

* * * * *

२२. अनंत काल के कवि को

अनंत काल से, अविराम रूप से अवनि को अमृतमय अथवा अमृत से ओतप्रोत करनेवाली तेरी कविता की परंपरागत मनहर माला में मैं अपनी कविता की एक सुगंधित सुमनमाला समर्पति करता हूँ, ओ मेरे अनंत काल के महाकवि, अमृत के अक्षय आकार-सरीखी अवनि के एकाकी अथवा अनादि कवि ! मेरी कविता की एक दूसरी सुगंधित सुमनमाला तेरे श्रीचरणों में समर्पित करता हूँ ।

अनंतकाल से चली आती तेरी अनेकविध कविता-कला के साथ मेरी कविता की तुलना करने की इच्छा नहीं । तेरी कविता में प्रेरणा का पारावार पड़ा है; सुख और शांति समायी है । तेरी कविता से जैसे मेरी, वैसे मेरी कविता से तेरी अंतरात्मा आनंद पाती है, इतनी धन्यता मेरे लिये कम नहीं, ओ मेरे महाकवि ! कविता की इतनी कृतकृत्यता मेरे लिये कम नहीं !

तेरी कविता की तरह मेरी कविता भी अमर रहेगी; अनंत काल तक अनेकानेक प्रवासियों को प्रेरणा प्रदान करती रहेगी ।

इस अवनि में कितने ही कविसम्राट हो गये और कितने होते रहेंगे । अनंत काल के उन कवियों में कोई एक कृतार्थ कविसम्राट तेरी कविता-कला का प्रतीक-जैसी इस अवनि को अमीमय और अनोखी देखकर आश्चर्य-चकित होगा । तेरे और कितने ही कवियों के सुख-स्वप्न उसे सार्थक लगेंगे । सार्थकता की इस अलौकिक सृष्टि में मेरी कविता की आहुति भी कम महत्व की नहीं होगी । अनंत काल के ओ महाकवि ! आज नहीं किन्तु उस समय, मेरी कविता अधिक अनोखी और आशीर्वादरूप लगेगी ।

* * * * *

२३. भूल की संभावना

मेरा मूल्यांकन करने में आपकी गल्ती हो जाय ऐसा संपूर्ण संभव है । क्योंकि मेरे पास आपकी अपेक्षानुसार पूजा का कोई बाह्याडंबर नहीं । नहीं है आरती, आराधना के लिये मूर्ति, अगरबत्ती, प्रसाद, सुमधुर सुमन या सुवासित सुमनमाला । नृत्यांगना के नर्तन, स्नेह से छलकते संकीर्तन, वाजिंदो के वादन, अंबर के अलौकिक आच्छादन; मेरे आरामप्रदायक अनोखे अमृतमय आवास में, उसमें से कुछ भी नहीं । आप जो चाहते हैं, अनुराग की अमित महिमा का जिससे मूल्यांकन करते हैं, मेरे पास वैसा कुछ भी नहीं !

मेरे पास तो है केवल शान्ति – असीम, अवर्णनीय, सनातन शान्ति, और अदभुत अनंत आह्लाद । स्वर्गीय सुख की वीणा मेरे अंतर के अंतरतम में बज रही है, और स्नेह की सुधा से भरी सुरावली जग रही है । मेरे अंग-अंग और अणु-अणु में इसके अक्षय आलाप का आविर्भाव हो रहा है, आत्मा के आसन पर इसीका अभिषेक हुआ है ।

अंतर में जो शांति-संगीत है इसे कोई विरला ही समझ या सुन सकता है । इसीलिये अधिकांश मुसाफिर तो निराश होकर म्लानमुख ही लौट जाते हैं । मेरा मूल्यांकन करने में आप गल्ती के शिकार बन जाय ऐसा संपूर्ण संभव है । मेरा बाह्य स्वरूप ऐसा अनोखा है ।

समस्त सृष्टि चाहे भूल कर बैठे तो भी जिनके लिये मेरी पूजा, आकांक्षा, आराधना और मेरा समस्त जीवन है वे भूल नहीं करेंगे, कभी भी नहीं करेंगे, इसकी मुझे प्रतीति है । उनकी अलौकिक आँख मेरे अंतर के अंतरतम को अथवा अणु-अणु को झंकृत कर देगी इसकी मुझे प्रतीति है ।

* * * * *

२४. मेरा उड्डयन

विमान में बैठकर, अनंत अवकाश में उड़कर कहते हैं कि किसी मानव ने पृथ्वी की परिक्रमा पूरी की । उड्डयन के ऐसे अनेक आश्चर्यकारक प्रयोग हो रहे है, जिसके परिणामस्वरूप मानव चंद्र में जायेगा, मंगल में मुसाफिरी करेगा और अन्य अनेक ग्रह-नक्षत्रों का अतिथि बनेगा ।

मानवजाति की विकासयात्रा का यह समाचार सुनकर, अथवा कहो कि आधुनिक विज्ञान के उस अलौकिक अथवा आश्चर्यजनक अन्वेषण की खबर पाकर, कोई-कोई प्रवासी मुझे पूछते है – आप भी ऐसे उड्डयन नहीं करेंगे अथवा विश्व के विहार को नहीं चलेंगे ?

उनको मैं उत्तर देता हूँ – भाईयो ! मेरा उड्डयन तो चालू ही है । अनंतकाल से मेरा अन्वेषण शुरू हो चुका है । कल्पना के कभी न मुरझानेवाले कोमल कुसुमों की माला बनाकर और कालातीत कवि बनकर, मैं चंद्र, मंगल और अवनि के आसपास नहीं उड़ता, किन्तु अपने उर के गहराईयों में, आत्मा के अंतःस्तल में गोता लगाता हूँ, और जो पाता हूँ, उसे संसार के समक्ष अर्पित करता हूँ ।

बाह्य उड्डयन की तरह आंतरिक उड्डयन भी मानव और समस्त सृष्टि के लिये आवश्यक और आशीर्वादरूप है, बल्कि उससे भी अधिक श्रेयस्कर है, इस बात को कौन नहीं मानता और इसका स्वीकार भी कौन नहीं करता ?

* * * * *

२५. सनातन स्नेह

सुख, सहूलियत और संपत्ति के सुनहरे समय में तो मैं आपको प्रेम करता हूँ और पकड़ रखता हूँ, परंतु दुःख, दीनता, दुर्दिन के दरम्यान भी मेरे अनुराग की आराधना और आरती ऐसी ही अक्षय अथवा अनवरत रहती है, इससे बहुतों को आश्चर्य होता है ।

प्रकाश तथा प्रज्ञा के पावन पलों में तो मैं आपसे प्रेम करता हूँ और पकड़ रखता हूँ, परंतु अंधकार अथवा अज्ञान से आवृत होने पर भी मैं आपके श्रीचरणों में अपनी स्नेहसुधा की अंजलि अर्पित करता रहता हूँ और अनवरत करता रहता हूँ, इससे बहुतों को आश्चर्य होता है ।

परंतु इसमें आश्चर्यकारक कुछ भी नहीं है । जो सुधाकर के संस्पर्श से पूर्णिमा के पवित्र दिन पुलकित और मंत्रमुग्ध बनकर नाच उठता है, वह अमावस की अंधेरी रात में भी अपना स्नेह-संगीत मूक रूप से गाया करता है । मेरे जीवन में भी मैंने आपकी आराधना का आरंभ प्रतिकूलता के पलों के दरम्यान ही किया था । और इसीलिये प्रतिकूलता मुझे मेरी निष्ठा से चलायमान नहीं कर पाती । सभी स्थलों में, सब समय मेरा स्नेह ऐसा ही अनोखा और अखंड रहता है, तथा अभिनव आलाप में आविर्भूत बनता है ।

* * * * *

२६. ईश्वर की सृष्टि

ईश्वर ने इस सृष्टि को इतना अधिक अमृतमय, अलौकिक, अनोखा और आशीर्वादरूप बनाया है; फिर तुमने उसे अमृतमय, अलौकिक और आशीर्वादरूप क्यों नहीं रखा ? ओ मानव ! तुमने उसे आनंदमय क्यों नहीं रखा ?

ईश्वर के सनातन, सुंदर सर्जनो को तू दोष देता है; किन्तु तू अपने सर्जन का तो विचार कर, तेरे अपने हाथों से जो दुःख, दीनता, दरिद्रता और द्वेष की दुनिया खडी हुई है, उसका विचार तो कर ।

तू चाहे तो उसमें परिवर्तन का नवीन प्रवाह पैदा कर सकता है, तथा सुख, समृद्धि, शान्ति, स्नेह और संवाद की नयी सृष्टि रच सकता है । उसके बजाय तू ऐसे विपरीत और विकराल रूप से चलता है कि दुनिया के दुःखो में अभिवृद्धि होती रहती है; दुनिया ओर भी अधिक कंगाल और क्लेशकारक बनती जा रही है ।

मैं तुझसे पूछता हूँ कि इस सृष्टि को अधिक सुंदर और सुखमय नहीं बना सकता ? स्नेह, सहकार, सेवा और शान्ति के सलिल-सिंचन से इसे सुधामय करने में सफल नहीं बन सकता ? उसके लिए प्रयत्न भी नहीं कर सकता ? और अगर कर सकता है तो फिर क्यों बैठा है और क्यों ईश्वर को दोष दे रहा है ?

ईश्वरने इस अवनि को इतना अधिक अमृतमय, इतना अलौकिक, अनोखा और आशीर्वादरूप बनाया है; फिर भी तुमने उसे अमृतमय, अलौकिक, अनोखा और आशीर्वादरूप क्यों नहीं रखा ? ओ मानव, उसे आशीर्वादरूप क्यों नहीं रखा ?

* * * * *

२७. अंतर को

जीवन के रूप में उपलब्ध इस अमूल्य, अवर्णनीय अवसर का आस्वाद ले ले, ओ मेरे अमीमय अंतर ! इस अनोखे, अनन्य अवसर का आस्वाद ले ले । शान्ति, सुख और अलौकिक आनन्दानुभव का असाधारण अवसर मिला है उसका अनुभव कर ले, आस्वाद ले ले और दे दे, ओ मेरे अमीमय अन्तर ! आस्वाद ले ले और दे दे ।

शरद और वसंत चला गया; वर्षा की रासक्रीडा चालू हुई । शुष्क सरिता अभिनव सलिल से संपन्न होकर, प्रेम से परिप्लावित बनकर पुनः बहने लगी । तेरे प्रत्येक परमाणु को उसी प्रकार असाधारण शृंगार से सजकर, रस से परिप्लावित बनकर तू भी बह ले, ओ मेरे अमीमय अंतर ! मही की मरूभूमि को मधुता से मढ़ दे ।

संगीत के समारोह में सम्मिलित संगीत-सम्राट की तरह संवाद साधकर, संगीत के स्वर्गीय स्वर के अनुसंधान से अवनि के अणु-परमाणु को भर दे, ओ मेरे अमीमय अंतर ! उस सनातन संगीत-सम्राट की सेवा में अपना सब कुछ समर्पित कर दे ।

* * * * *

२८. प्रवासी को

प्रवास का अधिकांश पंथ कट गया है, और अब स्वल्प समय शेष रहा है, प्यारे प्रवासी ! अब स्वल्प समय ही शेष रहा है । इस सुन्दर संसार की यात्रा का आरंभ किया उस समय संसार में जो सुंदरता, सरसता और सुमधुरता थी वही आज भी विद्यमान है । वही धरती और वही आकाश; वही ग्रह-नक्षत्र और ऋतुओं के परिवर्तन; वही संध्या, उषा और वही सरिता तथा सागर; न जाने कितने काल से उनका प्रवास चल रहा है । किन्तु तेरा प्रवास अब स्वल्प ही शेष रहा है । प्रवास का अधिकांश पथ कट गया है, और अब स्वल्प समय शेष रहा है, प्यारे प्रवासी ! अब स्वल्प समय ही शेष रहा है ।

स्वजन, स्नेही, सुहृद और संबंधियों में से अधिकांश अपने अपने प्रवास की परिपूर्णता होने पर विदा हो गये हैं, और दूसरे नये उनकी पूर्ति करने पहूँच गये हैं । इस अनादि उपवन की प्रत्येक दिशा में अनंत पुष्प और वृक्ष अपना प्राणधन फैला गये हैं और दूसरे अनेकानेक फैला रहे हैं । जिसका अभिनय पूर्ण हो जाता है, वह अपने साज और संगीत-स्वरों के साथ विदा हो जाता है ओर उसके स्थान पर दूसरे नये उस्ताद आ जाते हैं । प्रवाह का जल जैसे समाप्त नहीं होता, वैसे सर्जन, विसर्जन और अभिसरण की यह प्रक्रिया शाश्वतकाल से चली आती है ।

प्रवास की इस पूर्णाहूति के अवसर पर मैं तुझसे एक ही प्रश्न पूछता हूँ प्यारे प्रवासी ! जिसके लिये प्रवास का आरंभ किया था और जिसकी सिद्धि होने पर यात्रा की सफल पूर्णाहुति हो जाती है, उस अमोलक पदार्थ को तू पा चुका या नहीं ? तेरे लक्ष्यस्थान का स्मरण तुझे रहा ? उसके समीप पहुँचने के लिये तूने यथाशक्ति पुरुषार्थ किया ? यदि नहीं, तो यात्रा का समय निर्रथक रूप से, व्यर्थ ही निकल गया मान लेना, प्रवासी ! प्रवास का अधिकांश पथ कट गया है; अब स्वल्प ही समय शेष रहा है, प्यारे प्रवासी ! अब स्वल्प ही समय शेष रहा है ।

* * * * *

२९. दीपक का प्रकाश

शरद की शान्त संध्या में मैंने उन महापुरुष से भेंट की । सरिता के सुंदर तट पर उनकी पर्णकुटी थी, उसमें से अगरबत्ती की सुगंध आ रही थी ।

अनुराग की अंजलि प्रदान करते हुए, मैंने उनके आगे चार-पाँच पुष्प रखे, और उन्हें सप्रणाम पूछा – 'बाहर सर्वत्र अंधकार होने की तैयारी है तो भी आपने दीपक क्यों नहीं जलाया ? बाहर तो सर्वत्र अंधेरा होने लगा है ।'

उन महापुरुष ने प्रेमपूर्वक प्रत्युत्तर में कहा - 'प्यारे प्रवासी ! मैं आशा रखता था कि मेरी भावना को आप समझ सकेंगे, किन्तु अब मुझे ही स्पष्टीकरण करना चाहिये । मेरी साधना, आराधना और मेरा एकांतसेवन किसी बाह्य प्रकाश के लिये नहीं, किन्तु आंतर प्रकाश के लिये है । इस तथ्य की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिये दीपक न जलाने का मैंने वर्षों से नियम कर रखा है; अथवा ऐसा कहो कि वह क्रम मेरे लिये स्वाभाविक हो गया है ।'

उन असाधारण महापुरुष की असाधारण बात से मुझे संतोष हुआ ।

* * * * *

३०. दीप बुझेगा तो नहीं ?

'दीप बुझेगा तो नहीं ? अमर ही रहेगा ?'
यह प्रश्न ही नहीं ।

बाहर के समस्त दीप बुझ जाते हैं; दीवाली की दीपमाला और महोत्सव की रोशनी भी आखर शांत होती है; अरे, सूर्य, चंद्र और तारों का प्रकाश भी अखंड नहीं रहता । वह भी प्रकट होकर विदा हो जाता है, परंतु प्रेम का पावन प्रकाश ऐसा ही अचल, अक्षय रहता है ।

'दीप बुझेगा तो नहीं ? अमर ही रहेगा ?'
यह प्रश्न ही नहीं । वह तो अमर ही रहेगा ।

* * * * *

३१. क्यों विलंब और क्या चिन्ता

सत्य के पावन प्रकाश को पाने की उत्तम बुद्धि मुझ में न हो, यह समझ में आ सकता है, परंतु उतनी वास्तविकता से मैं विह्वल या निराश नहीं होनेवाला । आपकी शक्ति मेरे तन, मन और अंतर में, प्राण के प्रत्येक परमाणु में सत्य के पावन प्रकाश का प्राकट्य कर सकती है । फिर मुझे क्या भय है ?

प्रेम के पावन प्रवाह के प्राकट्य के लिये मेरे प्राणों में पर्याप्त पुनीतता न हो, यह समझ में आ सकता है, परंतु उतनी वास्तविकता से मैं विह्वल अथवा निराश नहीं होनेवाला । आपके प्रेम के प्रभाव से मेरे तन, मन और अंतर में, प्राण के प्रत्येक परमाणु में प्रेम के परम पुनीत प्रवाह का प्रकटीकरण हो सकता है । फिर मुझे क्या चिंता है ?

ज्ञान और सौंदर्य का साक्षात्कार करने योग्य अभिशुद्धि और अमृतमयता मेरे अंतर में न हो, यह समझ में आ सकता है, परंतु उतनी वास्तविकता से मैं विह्वल अथवा निराश नहीं होनेवाला । आपकी कृपाप्रसादी के परिणामस्वरूप ज्ञान और सौंदर्य का सांगोपांग साक्षात्कार हो सकता है । फिर मुझे क्या भय है ?

ओ मेरे प्रेममय, सत्यमय, सुंदर सुधासागर ! मुझमें अल्पता है, इसीलिये तो मैंने आपकी महानता की मदद माँगी है । वह महानता मेरी अल्पता का अंत लाने के लिये पर्याप्त है । फिर आपको क्यों विलंब और मुझे क्या चिन्ता ?

* * * * *

३२. शरीर की सहायता से ही

कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हे आजीवन प्रतीक्षा करना ठीक लगता है । वे मानते हैं कि आपका मिलन इस शरीर से नहीं हो सकता; आपके मिलन के लिये शरीर की समाप्ति की प्रतीक्षा करनी चाहिये । वे दिन-रात रोते हैं, प्रार्थना करते हैं, और उन्मत्त बनकर बेचैन की तरह फिरते हैं ।

किन्तु मेरा हृदय आपने कुछ अलग ही बनाया है । मैंने तो इसी शरीर में रहकर आपका स्नेह, साक्षात्कार और शाश्वत सहवास प्राप्त किया है एवं परम शान्ति तथा परमानंद का परिचय पाया है ।

शरीर की सहायता से ही मैंने आपको स्नेह किया है, आपका अनुसंधान साधा है, और शरीर के माध्यम से ही अपने अखंड, मधुमय, महामिलन के स्वर्गीय, सुधामय सरिता-संगम में स्नान करने का आनंदानुभव प्राप्त किया है ।

* * * * *

३३. आकांक्षा

सूर्य की स्वर्णिम कलात्मक किरणें कमनीय कमल पर पड़ती है, तब मानो कृतार्थता की कविता करता हो ऐसे कमल हिल, खिल और कल्लोल कर उठता है; और सरिता स्नेह की समग्र संपत्ति से संपन्न बनकर सागर में समाविष्ट होने जाती है, तब, नेह के नशे में नर्तन करके, सागर भी उसका सत्कार करता है ।

पुष्पों के उपवन में उड़नेवाले भँवरों को पुष्प अपनी प्रेमभरी पंखुड़ी हिला-हिलाकर आमंत्रण देते हैं । और वर्षा का शुभागमन होने से पहले ही, मेघमण्डल का निरीक्षण करते मयूर केका करता है और नृत्य करता है ।

उन सारी वास्तविकताओं का दिग्दर्शन कराकर आपके पास मैं अपेक्षा रखता हूँ कि प्रेम जब पारस्परिक होता है तभी उत्तम लगता है, अवर्णनीय आनंद प्रदान करता है । मैं चाहता हूँ की आपको मेरे प्रेम की प्रतीति हो, और आपका अंतर मेरे लिये बेचैन हो जाये, स्नेह से भरा-भरा हो जाये ।

कविता के कमनीय कुसुमों में, कवि बनकर मैं तो आपकी अनवरत आराधना कर ही रहा हूँ, किन्तु प्रेम से परिप्लावित बनकर, आप भी उस आराधना को अपने स्वर्गीय संगीत-स्वर से भरकर आशीर्वादरूप बना दें; मेरी इस आकांक्षा की आपको प्रतीति हो ।

* * * * *

३४. पुष्पों को देखकर

पर्वत की कराल कंदरा में प्रशांत पगदंडी पर से प्रवास करते करते मैंने पुष्पों का उपवन देखा । पर्वत पर छोटे और बड़े रंगबिरंगे पुष्प अनेक की संख्या में खिल उठे थे । मुझे देखकर उन्होंने हिलकर मेरा स्वागत किया ।

पर्वत के उस एकांत प्रदेश में उन पुष्पों को किसने पैदा किया ? किस कुशल माली की निगरानी में वे बड़े हुए और किसके सलिल-सिंचन से सुधा से भरे, सुवासित बने ? सुव्यवस्थित, सुरक्षित उद्यान में खिल उठने की अपेक्षा, मधुता से मण्डित वे प्रसन्न पुष्प पर्वत के उस एकांत प्रदेश में कैसे प्रकट हुए ?

उन परिमल-पावन पुष्पों के अवलोकन से मुझे विश्वास हो गया कि मानव की सुरक्षा से भी अधिक मूल्यवान आपकी सुरक्षा जिसे मिल जाती है, उसकी समस्त विकास-चिंता मिट जाती है । उसे कोई भय नहीं, शोक नहीं, संताप नहीं, और किसी प्रकार की कमी कभी नहीं रहती । उन परिमल-पावन पुष्पों के अवलोकन से किसी भी पर्वतीय प्रवासी को यह पाठ मिलेगा तो भी पर्याप्त होगा, इसी अभिलाषा से मैंने उनको कविता का उपहार अर्पित किया है ।



* * * * *

३५. प्रवासी मानव को

प्रकृति की कोई सीमा नहीं तो तू अपनी सीमाबंदी क्यों करता है प्यारे मानव ? संकुचितता की दीवालों को दूर कर और विशाल विश्व के नागरिक के रूप में साँस ले ।

उपर आकाश और नीचे धरती; और उसके बीच में जो भी सर्जन है, सब एक है । सबके अंदर एक ही परम प्रकाश है, और सभी उसी परम प्रकाशरूपी चेतना का प्रकटीकरण मात्र है । फिर भी विवेक को विलग करके, मेरे तथा तेरे, अपने और पराये की राग-द्वेषजन्य, भेदभावयुक्त दीवालें क्यो रचता है प्यारे मानव ? शान्ति में अशान्ति की, तेज में तमिस्त्र की, सुधा में सोमल की सृष्टि क्यों करता है ?

निसर्ग ने तुझे विश्व का विहारी, अनंत काल का प्रवासी बनाया है, और सृष्टि की समस्त संपत्ति तेरे चरणों में समर्पित की है । फिर भी, अपनी दुनिया को तूने अपने ही हाथों क्यों सीमित किया और क्यों उसे क्षुद्र समझा ? प्यारे प्रवासी ! सृष्टि के संवादी वातावरण में विसंवाद की क्रीड़ा क्यों की ?

पृथ्वी के प्रेम का, अखिल अवनि की एकता का अग्रदूत बनकर जीवन का महोत्सव मना ले, और दूसरों को भी उस अमृतमय उत्सव का दान दे, प्यारे मानव ! स्वार्थ, सितम, शोषण को छोड़ दे; महीमंडल को अधिकाधिक मधुमय बनाने में अपने को लगा दे ।

* * * * *

३६. बरसाती वातावरण

प्रखर प्रपात की तरह बरसती वर्षा के समय मुझे रामगिरि आश्रम के उस यक्ष का स्मरण हो आता है । विरह-वेदना से व्याकुल यक्ष ने, बरसाती बादल को देखकर, अलकापुरी के अलौकिक आवास में बसनेवाली अपनी प्रियतमा को संदेश भेजा । कविने उसकी कविता की है ।

मेरी अवस्था भी क्या ऐसी नहीं ? आपका होने पर भी आपसे विलग हुआ मैं, आपके प्रेम के परम पावन, प्रबल प्रवाह से प्राणों को परिप्लावित करके संसार में साँस लेता हूँ और प्रतिक्षण आपको अपना सुधामय स्नेह-संदेश सुनाता रहता हूँ । बरसाती बादल या वर्षा को देखकर ही उस संदेश का प्रारंभ नहीं होता, वह तो अहर्निश – आठों प्रहर चालू ही रहता है । देश, काल और वातावरण के बंधन उसे रोक नहीं सकते ।

बरसाती वातावरण में मेरी व्याकुलता बढ़ रही है तब, आप से प्रार्थना करता हूँ कि अनुराग की सुखद, आनंदप्रदायक वर्षा बनकर अब प्रकट हों, जिससे व्योम में विलसनेवाले इन्द्रचाप की तरह, मेरे तन, मन और अंतर में धन्यता का मेघधनु खिल उठे, जीवन में संपूर्णता का स्वर्गीय शांतिमय संगीत छूटे, प्राण के प्रत्येक परमाणु में परिमल के फुहार फूटें ।

* * * * *

३७. मानव को

अमृत के आनंदप्रदायक अपार अर्णव में अमृत के अतिरिक्त अन्य क्या हो सकता है ? मानव ! फिर भी आश्चर्यकारक है कि तू विषानुभव की व्यथा व्यक्त करता और विष का वमन करता है ।

सुधा के सनातन, सीमाहीन सागर में सुधा के सिवा अन्य क्या हो सकता है ? मानव ! फिर भी आश्चर्यकारक है कि तू सोमल के स्वाद का संताप प्रकट करता है और सोमल से भरे शब्दोच्चार करता है।

यह तो परिमल से परिप्लावित प्रफुल्ल पुष्पों का उपवन है । इसमें परिमल की प्रतीक्षा करना और परिमल के लिये पीड़ित होना नहीं बन सकता, मानव ! फिर भी आश्चर्यकारक है, इसमें श्वास लेकर भी तू परिमल के लिये प्रार्थना करता और पुकारता है ।

वसंत के विलास में पतझड़ का प्रवेश नहीं और अन्य ऋतु का निशान भी नहीं । इसके साम्राज्य में सर्वत्र सुख-ही-सुख, शान्ति-ही-शान्ति, आनंद-ही-आनंद रहता है, मानव ! फिर भी आश्चर्यकारक है कि इसका प्रजाजन बनकर भी तू सुख, शान्ति और आनंद के लिये तरसता है ।

अपनी दृष्टि और वृत्ति को बदल दे; फिर आज जो अभिशापरूप लगता है, कल वही आशीर्वादरूप हो जायेगा, माननीय मानव ! आज जो मृत्युमय है, कल वही नवजीवन बन जायेगा ।

* * * * *

३८. मंदिर में श्वास लेता हूँ

मंदिर में मैं शायद ही कभी जाता हूँ, इससे आश्चर्यचकित होकर एक प्रतिमा-प्रेमी ने मुझसे मिलकर इसके संबंध में प्रश्न पूछा ।

मैंने उसके प्रत्युत्तर में कहा - 'प्रेमी ! मंदिर के प्रति मुझे मान है, किन्तु मेरा मंदिर महान, अधिक मंगलमय और विशाल है । समस्त सर्जन सुंदर मंदिर है, और उसमें जो कुछ है, सभी प्रतिमामय । सबके अंदर मैं उस विराट चेतना का दर्शन करता हूँ और सभी को मनोमन वंदन । मंदिर में मैं शायद ही कभी जाता हूँ; फिर भी इतने स्पष्टीकरण से आप सरलता से समझ सकेंगे कि मैं मंदिर में ही श्वास लेता हूँ ।'

उसकी मुखाकृति से मैं समझ सका कि मेरे उत्तर से उन्हें आनंद हुआ ।

* * * * *

३९. मेरी पसंदगी

अज्ञान और अहंकारोत्पादक असत्य की आसक्ति का आनंदप्रदायक, आडंबरयुक्त ज्ञान – दोनोंमें से मुझे कुछ भी अभीष्ट नहीं । फिर भी इनमें से किसी एक को पसंद करना अनिवार्य हो, तो मैं अज्ञान को ही पसंद करूँगा; अहंकारोत्पादक, आडंबरयुक्त ज्ञान को नहीं ।

गरीबी, और आँख तथा अंतरात्मा को अंधा करनेवाली अमीरी – दोनोंमें से कुछ भी स्पृहणीय नहीं है । फिर भी इनमें से एक को स्वीकार करना आवश्यक हो, तो मैं गरीबी को ही करुँगा; आँख और अंतरात्मा को अंधा करनेवाली अमीरी को नहीं ।

निर्बलता, और निर्बलों को सताकर सत्ता-स्पर्धा करनेवाला अविवेकी आतंककारी बल – दोनोंमें से किसी की भी इच्छा नहीं । फिर भी इनमें से किसी एक को अपनाना अनिवार्य हो, तो मैं निर्बलता को ही अपनाऊँगा; अविवेकी आतंककारी बल को कदापि नहीं ।

अशक्ति, और अनेक के अंत लाने में काम लगनेवाली, अन्य के सर्वनाश का साधन बननेवाली शक्ति अथवा सिद्धि – दोनोंमें से कुछ भी स्पृहणीय नहीं । फिर भी इनमें से किसी एक का स्वागत करना आवश्यक हो, तो मैं अशक्ति का ही करूँगा; अन्य के सर्वनाश की सामग्री बननेवाली या बनना चाहनेवाली शक्ति, शोध अथवा सिद्धि का नहीं ।

संस्कारहीनता, और दूसरों को फँसाने, दबाने और धोखा देने में पटुतावाली चतुराईभरी, चालाक कहलानेवाली, श्रेष्ठता के अभिमान से युक्त, स्वच्छंद संस्कारिता – दोनोंमें से कोई भी वांच्छनीय नहीं । फिर भी इनमें से किसी एक का सत्कार करना अनिवार्य हो, तो मैं संस्कारहीनता का ही करूँगा; चतुराईभरी, चालाक कहलानेवाली स्वच्छंद संस्कारिता का नहीं ।

* * * * *

४०. सम्मान की सुमनांजलि

भूमि के भूगर्भ में प्रवेश किया और अनेक अति नवीन अलौकिक रहस्यों को खोजने के लिये अनन्त अथवा असीम आकाश में उड्डयन किया । पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण करके, चंद्र और अन्य ग्रह-नक्षत्रों में पडाव डालने का आयोजन किया । संहार के सर्वोत्तम साधनों की शोध की, और विस्मयकारक वैज्ञानिक प्रयोग भी कर दिखायें ।

अवनि में अभूतपूर्व, आश्चर्य में डालनेवाले कार्य पर्याप्त कर चुका, और वैसे कार्य तो तू कितने ही कर रहा है, प्यारे मानव ! किन्तु तुने अपनी आत्मा की दुनिया पर अधिकार नहीं किया, तू अपने आसपास की दुनिया का सहायक नहीं बना, तो फिर यह सब किस काम का ? यह सभी, जरा बता तो सही, किस काम का ?

अपने ज्ञान-विज्ञान और बुद्धिबल के वैभव को लेकर, मानवता के मांगल्य के महायज्ञ में संमिलित हो, और संसार को इससे भी अधिक सुखी, शांत, सहकारमय बनाने की कोशिश करता चल । मानवता को उपास्य देवता मान ले, और सृष्टि के संर्वमंगल को अपना एकमात्र आदर्श । उससे अनुप्राणित होकर आगे बढ़ या पुरुषार्थ कर । उससे तेरा अपना ऐश्वर्य तो धन्य होगा ही, तू संसार का भी श्रेय-साधक होगा ।

अपने और अन्य के प्रगति के पावनकारी अभ्युदय के परम मंत्र को प्राणों में प्रस्थापित करके आगेकूच कर ! मेरी सम्मान की स्नेह से भरी, सुधामयी सुमनांजलि तुझे अवश्य मिल पायेगी, और तभी मिल पायेगी ।

* * * * *

४१. अंत नहीं होगा

सुख की सनातन वर्षा बरसाओ या दुःख के दावानल से दग्ध करो; आपके प्रति मेरे अनुराग का, आदर और विश्वास का अंत कभी भी नहीं होगा ।

आनंद के अमीमय अर्णव में अवगाहन का अलौकिक अवसर दो अथवा शोक की सूखी सरिता में सदा के लिये संतप्त करते रहो; आपके प्रति मेरे अनुराग का, आदर और विश्वास का अंत कभी भी नहीं होगा ।

शांति की सुमधुर सुवासित सुमन की मनोहर माला पहनाओ अथवा अशांति के अंचल से अंतर को अधिकाधिक आवृत करो; आपके प्रति मेरे अनुराग का, आदर और विश्वास का अंत कभी भी नहीं होगा ।

मान के मादक मधु का पान कराओ अथवा अपमान की अनंत अंजलियाँ प्रदान करो; सफलता के स्वयंवर में सफलता के सहित शामिल करो अथवा निष्फलता के निराशाजनक नट बनने का उपहार धरो; संपत्ति के स्वर्गीय सुरापान के सुख का दान करो या विपत्ति के वेदनामय वड़वानल से व्याकुल करो; आपके लिये मेरे अनुराग का, आदर और विश्वास का अन्त कभी भी नहीं होगा ।

क्योंकि उसमें बदले की आशा नहीं, गिनती की अभिलाषा नहीं और व्यवसाय की अभीप्सा भी नहीं । उसके आगे और पीछे एक ही प्रेरणात्मक मंत्र है – प्रेम, अथवा दूसरी भाषा में कहना हो तो कहो कि कर्तव्य । इसलिये कहता हूँ कि, किसी भी स्थल, स्थिति और समय में भी, आपके प्रति मेरे अनुराग का, आदर और विश्वास का अंत कभी भी नहीं होगा ।

* * * * *

४२. जैसे हो वैसे

आप सुंदर हो अथवा असुंदर, सुरूप अथवा कुरूप, उसका विचार मैंने कभी भी नहीं किया । जैसे भी हो, वैसे आप मुझे पसंद हो । मेरी आँख में और अनुराग से आप्लावित अंतर में आप बस चुके हो; मैं आपको सुंदर और सुरूप समझता हूँ । जैसे भी हो, वैसे आपको चाहता हूँ और अपना मानता हूँ ।

आप सर्वगुणसंपन्न हो अथवा गुणातीत; सगुण, निर्गुण अथवा अल्पगुणयुक्त; इसकी चिंता मैंने नहीं की । जैसे हो, वैसे आप मुझे पसंद आ गये हो; मेरी आँख में और अनुराग से आप्लावित अंतर में विराज चुके हो, और मैं आपको सर्वगुण और शील के समुच्चयरूप और सब कुछ समझता हूँ । जैसे हो, वैसे चाहता हूँ और अपना मानता हूँ ।

आप ज्ञान और शक्ति के सीमारूप हो अथवा अशक्तिमान और अल्पज्ञ; इसकी आशंका मुझे नहीं हुई । जैसे हो, वैसे आप मुझे पसंद आ गये हो; मेरी आँख में और अनुराग से आप्लावित अंतर में बस गये हो; और मैं आपको संपूर्ण शक्ति तथा सर्वोत्तम ज्ञान के साररूप समझता हूँ । जैसे हो, वैसे चाहता और अपना मानता हूँ ।

आपमें जो कुछ है और होगा, उन सबके साथ प्रेम करता हूँ और करूँगा; चिपककर बैठा हूँ और बैठा रहूँगा; भजता हूँ और भजूँगा; जपता हूँ और जपूँगा । आपके सर्वविध स्वरूप में आप मेरे हो और मेरे ही रहनेवाले हो । जैसे हो, वैसे आपको चाहता हूँ, अपना मानता हूँ ।

* * * * *

४३. एक ही हाथ का अंतर

एक अपिरिचत आवास में एक सहस्त्र हाथ की गहराई में, स्वर्ण और मोती की मालाएँ तथा स्वर्ण-मुद्राएँ गड़ी हुई थीं । दो मित्रों को उसका पता चला । वे उन्हें निकालने को तैयार हुए । हथियार और अन्य सामग्री से सजकर वे उस अंधेरे एकाकी अज्ञात आवास में आ पहूँचे ।

एक मित्रने उस स्थान में खोदना प्रारंभ किया । कठिन परिश्रम के बाद उसने नौ सो निन्यानवे हाथ खोद लिया, किन्तु कुछ भी नहीं मिलने पर वह हताश हो गया । भग्न हृदय से उसने अपने हथियार छोड़ दिये ।

दूसरे मित्रने कहा – 'हताश किस लिये होता है ? संभव है, तुझमें और तेरे भाग्य में एक ही हाथ का अंतर हो ।'

किन्तु उसका मन अधिक पुरुषार्थ के लिये नहीं माना । दूसरे मित्र ने बाद में एक ही हाथ अधिक खोदा और गड़ा हुआ भंडार हस्तगत किया ।

* * * * *

४४. दो दृश्य

अंधकार के आवरण के आसपास सभी दिशाओं को भेदकर प्रभाकर के पावन प्रकाश का प्राकट्य हुआ । पक्षी प्रसन्नता से पुकार उठे, द्रुम डोल उठे, और पत्र तथा पुष्पदल के तुषारबिंदु उसके आह्लाद से आप्लावित बनकर ढल पडे । उसका अवलोकन करके किसी कवि की हृदय-बीन बज उठी – अंधकार से डरने का क्या कारण है ? अंधकार के बिना उजाला कहाँ है ? प्रकाश के पावन प्रकटीकरण के लिये अंधकार अनिवार्य है ।

ताप से संतप्त धरती आकुल-व्याकुल होकर अंतर के अंतरतम से पुकार उठी, तब बादल उसकी मदद को आये और वर्षा की अमीधारा का आरंभ हुआ । व्याकुलता की विस्मृति करके पृथ्वी का प्राण स्वल्प समय में ही प्रसन्न-प्रसन्न हो गया । उसकी झाँकी करके किसी कलाकार के कोमल कलेजे में से शब्दावली छूटी – 'व्यथा से विह्वल होने का क्या कारण है ? ताप के बिना छाया है ही कहाँ ? जो सहता है, वही शान्ति लाभ करता है; और जो विपत्ति तथा वेदना का विषपान करता है, वही सुधासिन्धु में स्नान करने का सौभाग्य पाता है । ताप तथा वेदना, छाया तथा शान्ति के लिये अत्यंत अनिवार्य है।'

निराश बने और जीवन की झंझा और जहर से संतप्त, आकुलव्याकुल हुए मानव ने उन दोनों दृश्यों का अवलोकन किया, तबसे वह आशा से अलंकृत हुआ; उसका शोक शान्त हो गया और जीवन के प्रति उसका प्रेम और विश्वास बढ़ गया ।

* * * * *

४५. संसार का स्वरूप

विभिन्न रूप-रंग से संपन्न, माधुर्य से मंडित संसार का निरीक्षण करके विद्वान भी विस्मित होते हैं । उसकी किसके साथ तुलना करनी चाहिये, इसकी समझ साक्षरों को भी नहीं । पंडितप्रवर भी अपनी प्रखर प्रज्ञा से उसका पार नहीं पा सकते ।

ऐसे ही एक प्रखर परंतु परिमित प्रज्ञावाले पंडित पुरुष ने मुझसे मिलकर, मुझसे संसार के स्वरूप-संबंधी सवाल पूछा, तो मैंने नम्रतापूर्वक प्रत्युत्तर दिया – पंडितप्रवर ! मैं कोई पंडित अथवा साक्षर नहीं, किन्तु कवि हूँ । और कविता की शैली में ही उत्तर देता हूँ । पंडित के पांडित्य के बजाय कवि की कोमल कल्पना से संयुक्त होकर, कवि के रसज्ञ हृदय से संसार को समझो तो उसका स्वरूप कुछ अंश में समझा जायेगा ।

संसार संगीत के सुंदर सुमधुर समारोह-सरीखा है । उसमें विभिन्न वाद्य और अनेक प्रकार के ताल तथा स्वर के साजों का संगम हुआ है । सभी अपने-अपने स्वाभाविक, सहज संगीत-स्वर छोड़ते रहते हैं । अथवा यह भी कह सकते हो कि संसार बहुरूपी, विविधरंगी फूलों के विशाल उपवन-जैसा है । अलग अलग डाली पर खिले पुष्प एक ही माली की ममता से बड़े हुए हैं, सौरभपूर्ण बने हैं, और बाहर से भिन्नभिन्न दिखने पर भी एक ही काम कर रहे हैं ।

कभी कल्पना होती है कि यह एक महामेला है । अनंतकाल से लगा यह महामेला अभी पूरा नहीं हुआ, और अनिश्चित काल के लिये निर्मित हुआ है – ऐसा लगता है । व्योम के सदृश इस विशाल संसार में अनेकानेक नक्षत्र, ग्रह, बिजली और बादल, सूर्य, चंद्र का संचार हो रहा है ।

ये भी लगता है की संसार पृथक्-पृथक् लघु और महान सरिताओं का समुच्चय जैसा है । अपने-अपने स्वतंत्र संगीत में मस्ती माननेवाली समस्त सरिताएँ सूक्ष्मता से निरीक्षण करने पर, सागर में समाविष्ट होने के लिये ही भागती जा रही है । कलेवर अलग, किन्तु उनके अंतर एक ही आलाप में ओतप्रोत होकर आगे कूच कर रहे हैं ।

उसकी संपूर्ण समता किसके साथ, किस प्रकार कर सकते हैं ? विभिन्न रुप-रंग से संपन्न, माधुर्य से मण्डित संसार का निरीक्षण करके विद्वान भी विस्मित होते हैं । उसकी समता किसके साथ करनी चाहिये, इसकी समझ साक्षरों को भी नहीं । पंडितप्रवर भी अपनी प्रखर प्रज्ञा से उसका पार नहीं पा सकते । मैं तो केवल कवि हूँ । उसका परिपूर्ण पार कैसे पा सकता हूँ ?

* * * * *

४६. भूलने के लिये असमर्थ हूँ

आपके अपार, प्रबलतम प्रेम को भूलने के लिये मैं सर्वथा असमर्थ हूँ । संसार में श्वास लिया तभी से, माता के मधुमय रूप में आपने मुझे सम्हाला, सुरक्षा की; और उसके बाद भी, विविध वेश धारण करके, मुझे अपने स्नेह का सुधामय प्याला पिलाते रहे ।

ऐसा कोई क्षण नहीं, जब आपने मेरी अवज्ञा की हो; और ऐसा कोई भी स्थल नहीं, जहाँ आपने सनातन, स्वर्गीय स्मित के साथ मेरा स्वागत न किया हो । आपके स्नेह-सितार के सुखदायक, शांतिप्रदायक सरोद के श्रवण के लिये शायद मैंने उदासीनता दिखायी होगी, किन्तु आपका स्वर्गीय संगीत सुबह-शाम चालू ही रहा । अवनि में मैंने आँख खोली, तबसे आज तक चालू ही है ।

प्रेम की परिमल-प्रफुल्ल माला लेकर आपने मेरा सदा स्वागत किया है, और प्रतिकूल प्रसंग अथवा संकटमय संयोग में भी आपका व्यवहार ऐसा ही अक्षुण्ण रहा है ।

आपके अनुराग को अत्यंत अल्प अथवा अपूर्ण अंजलि प्रदान कर सकता हूँ, और ऐसी अंजलि अनेक बार अर्पित है; परंतु उसका बदला मुझसे किसी प्रकार नहीं दिया जा सकेगा । बरसती वर्षा अपनी अवनि के अनुराग और आभार की अभिव्यक्ति कर रहा है तब, कृतज्ञता की कविता करके, स्नेह के सार-सरीखी एक ही पंक्ति गा सकता हूँ – आपके अपार, प्रबल से प्रबल प्रेम को भूलने के लिये मैं एकदम असमर्थ हूँ ।

* * * * *

४७. जीवन और मरण

जीवन और मरण ... ! लोग उनमें से एक का उत्सव करते हैं और दूसरे का शोक । एक के लिये आनंद की अभिव्यक्ति और दूसरे के लिये क्रंदन । किन्तु उनके रहस्य को शायद ही कोई जानता है । और जो जानता है, वह हर्ष और शोक, उल्लास और क्रंदन – उभय से अतीत हो जाता है ।

नाटक के रंगमंच पर एक अभिनयपटु अभिनेता आकर पाठ का प्रारंभ करता है – वह जीवन, और विश्राम-कक्ष में प्रवेश करने रंगमच पर से प्रयाण करता है – वह मरण ।

अथवा ऐसा कहो, उस्ताद के हाथमें सुशोभित, सुंदर सितार का स्वर छूटता है – वह जीवन, और सितार में से कामचलाउ समय के लिये स्वर नहीं छूटता या शांत बनता है – वह मरण ।

अथवा प्रभात के प्रथम प्रहर में पक्षी अपने-अपने नीड़ त्यागकर विहार के लिये निकल जाते हैं – वह जीवन, और संध्या के सुभग समय में सुर्खी के आरंभ में अथवा समाप्ति पर पहुँचते, अपने नीड में पुनः प्रविष्ट होते हैं – वह मरण ।

अथवा पीयूष के प्याले को अधरों पर रखकर पीयूषपान करने का अवसर मिले – वह जीवन, और उस प्याले को विलग करके अन्य पियूष-प्याले को दिया जाये – वह मरण ।

जीवन और मरण ... ! लोग उनमें से एक को सुखद समझते हैं, और दूसरे को शत्रु । एक को आदर से देखते हैं, दूसरे को अनादर से । एक से निर्भय बनते हैं, दूसरे से भयभीत । किन्तु उनके मर्म को कदाचित् और कोई ही जानता है । जो जानता है, वह हर्ष और शोक, आदर और अनादर, निर्भयता और भय, सबसे पर हो जाता है । उसके लिये जीवन-ही-जीवन रह जाता है, एकमात्र अमर जीवन रह जाते है, मरण मर जाता है ।

* * * * *

४८. कविता की कमनीयता

कल्पना के कोटि-कोटि कुसुमों से कमनीय, कवि के काव्य-संग्रह को देखकर, एक अक्खड, अभिमानी भाषाविद् ने कहा – 'इसमें कुछ भी नहीं । भाषा-शास्त्र की दृष्टि से यह संग्रह सर्वसाधारण है । इसमें कोई ध्यानपात्र विशेषता नहीं ।'

शास्त्रों के सार को समझे हुए, किसी साक्षरवर्य ने अपना अपेक्षित अभिप्राय देते हुए कहा - 'इतनी अल्प अवस्था में शब्द तथा भावों का ऐसा अधिकार एकदम असाधारण कहलायेगा; अंतर की अक्षरदेह की अभिव्यक्ति अत्यंत असाधारण, अलौकिक अथवा अनोखी कहलायेगी । उसके लिये मेरे अनेकानेक आत्मिक अभिनंदन !'

कुसुम को केश में कलात्मक रूप से गूँथकर कल्लोल करती किसी कुमारिका ने कवि को काव्यात्मक पत्र में कहा, 'कवि ! कुसुम की मनहर माला-जैसी काव्यकृति के लिये कृतज्ञता की अभिव्यक्ति करती हूँ । मेरे-जैसी कितनी कोड़भरी, कवित्वमयी कन्याओं के कलेजों को तू आकर्षित कर चुका है, यह किस प्रकार बताऊँ ? मैं उन सबकी प्रतिनिधि हूँ । तेरी काव्यकृति से मुग्ध होकर मैं सर्वसमर्पण करने और तेरी बनने के लिये तत्पर हुई हूँ ।'

प्रकाशक ने कहा - 'महाशय ! संग्रह था तो अच्छा किन्तु नविन कवि का, अतः मुझे स्वीकार नहीं हुआ, और मैंने छापने से इन्कार कर दिया । परंतु यह तो अत्यंत सफल हुआ और असाधारण असर डाल गया । इसकी पुनरावृत्ति की जिम्मेदारी मुझे ही सुपर्द करना ।'

कवि के कोमल कलेजे ने कहा - 'मेरी कथा कोई भी नहीं कहता । मेरे कितने क्रन्दन इन काव्यों में मूर्तिमंत हुए हैं, करुणा की कितनी कथाएँ इनकी पंक्ति-पंक्ति में कही गयी हैं, कितने आनंद की अनुभूति और पीड़ा तथा प्रार्थना का कितना प्रकटीकरण ... ! मेरी कथा तो कोई भी नहीं कहता ।'

आत्मा की अवाज आयी - 'अरे अभागे ! आज भी शांत नहीं रहता और प्रसन्न नहीं होता ? रस की अखंड, अलौकिक अनुभूति में अपनी सहज विस्मृति, यही तो सच्ची कविता की कलात्मकता अथवा कमनीयता है । आज भी शांत नहीं रहता ?'

* * * * *

४९. रक्षा करो

विज्ञान की विशाल शक्ति विघातक बनकर सृष्टि की सुख-शांति तथा समृद्धि के बजाय सृष्टि के संहार का साधन बन रही है । एटम, हाईड्रोजन, कोबार्ट-जैसे कृतांत के दूत-सरीखे बमों का संग्रह करके अहंकारी मदोन्मत्त मानव संसार के सर्वनाश के सागर-तट पर आसन लगाकर बैठा है ।

बातें प्रीति की किन्तु वृत्ति विद्वेष की; शब्द शांति और सहकार के परंतु साधना अशांति और असहकार की; ऐसे मानव-नेता अपने-अपने पक्ष और बल की अभिवृद्धि की स्पर्धा में पड़े हैं; उसके लिये सभी शक्य साधनों का आश्रय ले रहे हैं ।

अंगार अनेक हैं, और आसपास फैला है कोयला । उन पर हवा देने की अवस्था है । कब विस्फोटक जल उठे और सर्वभक्षी बने, यह एकदम अनिश्चित है; किन्तु विध्वंस और विप्लव के बादल चारों ओर आवृत्त हैं, आतंक की आशंका है, इतना निश्चित है ।

कवि की हेसियत से ही नहीं, किन्तु आपके परम प्रामाणिक, पुरातन प्रेमी की हैसियत से भी आपसे प्रार्थना है - 'मानव के मन की मलिनता का मार्जन करो; मानव को मानवता से मंडित करो और मानव-बुद्धि तथा विज्ञान की शक्ति का, सांसारिक सुख-सौभाग्य तथा समृद्धि के लिये समन्वय अथवा सदुपयोग करो । उस प्रकार संस्कृति की ही नहीं, उसके सर्जक महामहिमामय, महामूल्यवान मानव-मन की रक्षा करो ।'

* * * * *

५०. इसीलिये माँगा है

अनंत काल तक का जीवन मिले, अखंड यौवन की प्राप्ति हो; वृद्धावस्था तथा व्याधिरहित अवस्था से अलंकृत बनने का सौभाग्य प्राप्त हो; अतूट ऐश्वर्य, आदर और सुख-साधन से संपन्न जीवन हो । प्रज्ञा के परम प्रकाश से प्रकाशित और उपनिषत्-कालीन ऋषिवर की आकांक्षा के अनुसार, शत-शत शरद ऋतु तक शरीर की स्वस्थता अक्षुण्ण रहें; कानों से अच्छा श्रवण हो, आँखो से सुचारु रूप से देखना हो और मन से मनन करना हो ।

फिर भी, वो जीवन आपके बिना नीरस और भाररूप ही लगेगा । आपके दर्शन, स्पर्श और आपकी शुश्रूषा से रहित जीवन शायद ही किसी विशिष्टता से संयुक्त हो सकेगा ।

इसीलिये मैंने माँगा है कि दूसरा तो जो कुछ भी मिलनेवाला हो सो मिले, किन्तु आपका मधुमय, महामूल्यवान महामिलन शाश्वत काल के लिये अवश्य मिले, और मेरे अल्प अथवा अनंतकालीन जीवन को जीवन से भरे, कृतार्थ करे !

*   *   *   *   *

५१. अखंड आराधना

मेरा समस्त जीवन आपकी अलौकिक, उच्चोच्च उपासना का प्रतीक बन गया है, या तो यूँ कहो कि आपकी प्रेमपूर्ण पूजा का प्रतीकरूप बन गया है ।

जब सो जाता हूँ तब आपके ही सुंदर, सुधापूर्ण शरीर के संस्पर्श से मिलनेवाले आराम का आस्वाद पाता हूँ, और जाग्रत् होकर आपकी ही झाँकी करता हूँ ।

भोजन करते समय आपका ही महाप्रसाद आपको समर्पित करता हूँ, और पान करते समय आपकी ही प्रसन्नता का पीयूष आपको समर्पित करके कृतार्थ बनता हूँ ।

पृथ्वी का प्रवास करते समय आपकी ही प्रदक्षिणा करता हूँ, और विश्राम के समय आपकी मंगल महिमा में विलीन होता अथवा एकरूप बनता हूँ ।

उसी प्रकार आपकी आराधना मेरे प्राण के प्रत्येक स्पंदन और जीवन के अंगांग में आवृत हो चुकी है । आपकी आराधना के लिये एकांत में आसन लगाकर आँख मींचने की, और उसके परिणाम-स्वरूप प्राप्त होनेवाले पीयूषपान के लिये जिह्वा को काटकर तालुप्रदेश में लगाने की आवश्यकता अब नहीं रही । मेरी आराधना ऐसी अनोखी, अमोघ और अखंड बनी है ।

* * * * *

५२. संस्मरण की सामग्री

विश्व के विविध वातावरण में रहकर, सनातन शांति और संपूर्ण सुख से संपन्न वही हो सकता है, जो अपने अंदर, अंतर के अंतरतम में लीन बने, अथवा आत्मा में ओतप्रोत हो जाय । सांसारिक सुख और आनंद की आशा से रात-दिन रोनेवाले और परिश्रम करनेवाले को उसकी प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती । इसीलिये, कहलानेवाले इन्द्रियजन्य आनंद की आकांक्षा और खोज को छोड़ दे, तथा सर्वशक्तिमान के क्षीरसागर में गोता लगा ले !

विश्व के विविध वातावरण में वास करके, सनातन शांति और संपूर्ण सुख से समृद्ध वही बन सकता है, जो संसृति के समस्त बंधनो को निर्दयतापूर्वक तोड़ दे, और अपने ज्ञान की समस्त संपत्ति स्व और पर की प्रसन्नता के लिये सुरक्षित रखे या खर्च करे । इसीलिये, कहलानेवाले इन्द्रियजन्य आनंद की आकांक्षा तथा खोज को छोड़ दे, और सर्वशक्तिमान के क्षीरसागर में गोता लगा ले !

विश्व के विविध वातावरण में श्वास लेकर, सनातन शांति तथा संपूर्ण सुख से सुशोभित वही बन सकता है, जो सांसारिक पदार्थों के आधिपत्य को त्याग दे, और अपना मुख्तारनामा ईश्वर के हाथ में अर्पित करके चैन की साँस ले । इसीलिये, कहलानेवाले इन्द्रियजन्य आनंद की आकांक्षा तथा खोज को छोड़ दे, और सर्वशक्तिमान के क्षीरसागर में गोता लगा ले !

आवागमन का अंत इसके बाद ही आ सकता है और आत्मा भी तभी मुक्ति के महारस का आस्वादन कर सकता है । तभी खोज परिपूर्ण होती है तथा तृषा को तृप्ति मिलती है । संतपुरुष के स्वर्गीय संगीत को सुन ले और खुद को संस्मरण की सामग्री कर ले !

* * * * *

५३. मधुमयी मही की कल्पना

विज्ञान की मदद से मानव ने पृथ्वी की प्रदक्षिणा पूरी करके चंद्र की विजय-यात्रा के स्वप्न शुरू किये हैं । उसकी अभिलाषा सफल होने की पूरी संभावना है ।

संस्कृति की बातें करनेवाले मानव की प्रवृत्ति सबको रोजी और रोटी प्रदान करने की है, और वह सबको आश्रयस्थान और विद्या की प्राप्ति हो, ऐसी योजना बनाता है । कारखाने, नहरें तथा बाँधो का निर्माण करके उत्पादन बढ़ाने की और जीवन का स्तर सुधारने की कोशिश करता है । उसकी योजना तथा कोशिश सफल होने की संपूर्ण संभावना है ।

यह सब देखकर मेरा प्राण प्रसन्न होता है किन्तु मानव-प्राण को कैद करने और उसे अनेक प्रकार की धाक-धमकी तथा यंत्रणा देने और गुलामी से घोंटने का कार्य करनेवाली संस्कृति की यह साधना सर्वोत्तम कभी नहीं कहलायेगी । ऐसी साधना और संस्कृति अलौकिक, असाधारण, आत्मा की आराधना का आधारस्तंभ रूप कभी नहीं बन पायेगी । उसमें और सब कुछ होगा, सर्वोत्तम स्वरूप में होगा; परंतु मानव नहीं रहेगा, मानव-मुक्ति की कामना और मुक्ति की महफिल नहीं होगी, और मानव की अपेक्षा दानव का वर्चस्व फैला होगा ।

नहीं, नहीं । ऐसी साधना और संस्कृति की उपासना करके अथवा उसे अंगीकार करके मैं क्या करूँगा ? मेरा देवदुर्लभ, देवप्रिय, देवदूत देश भी क्या करेगा ? दुनिया भी क्या करेगी और उसका आराधक समाज भी क्या करेगा ? देश को ही नहीं, सारी दुनिया को वह दावाग्नि में भस्म कर देगी ।

इसीलिये मेरी अर्ज है कि उस संस्कृति एवं साधना का समन्वय करो; पूर्व तथा पश्चिम का समन्वय करो । आपका विज्ञान और हमारा मानव-सुधार तथा समुन्नति और मानव-स्वतंत्रता का शास्त्र – इनको एक करो; और इस एकता के परिणामस्वरूप, मानव के अंतर को आलोकित करो और सदा के लिये उर्ध्वगामी करके मानव और मानव-संस्कृति का संरक्षण करो; उनके सच्चे संरक्षक बनो ! कवि की युग-युगों की, मधुमयी मही की कल्पना को उसी प्रकार साकार करो !

* * * * *

५४. युद्ध के अभिलाषी को

भाइयो ! इस आनंदमयी अमृतमयी अनोखी अवनि में आकर अमृत का आस्वादन करने के बजाय, विष की विकराल भाँप को किस लिये निकाल रहे हो ? आप तो पीयूष-पुत्र हो; पीयूष को पीने-पिलाने के लिये ही आपका आविर्भाव हुआ है । फिर, आज इस अलौकिक अवसर पर, रस से रिक्त बनकर धरती को रसवंती बनाने की जगह रस का ह्रास किस लिये कर रहे हो ?

आपके शस्त्रों के ढेर से धरित्री का हृदय हिल उठा है और रो रहा है । आपके बम और आपकी विस्फोटक, विनाशक शस्त्र की सामग्री से उसका तेजस्वी मुखमंडल कुछ म्लान हो गया है; मन असमंजस में पडा है । आपको परस्पर लड़ते और लड़ने की तैयारी करते देखकर उसका प्राण चित्कार कर उठा है; उसका आनंदपूर्ण आत्मा क्रंदन कर रहा है । माता सदा ही मीठी नजर से आपको निरखती और आपकी सुरक्षा करती है । पर, आप एक ही माता की संतान होकर भीषण ज्वालामुखी के मुख को खोलने की और उसके अंतःस्तल को जलाने की कोशिश कर रहे हो । यह देखकर उसका हृदय विदीर्ण हो गया है; उसकी निद्रा उड़ गयी और सारी सुध-बुध नष्ट हो गयी है ।

भाइयो ! यह सब करुणातिकरुण तैयारी किस लिये ? धरित्री आप सबकी है, और आप उसके हो । फिर भी उसीके अंक पर आसीन होकर, सर्वनाश की सनातन साधना किस लिये ? किस लिये यह टीका-टिप्पणी और विद्वेष तथा सर्वसंहार की अमंगल आराधना का आरंभ ? एक ही मंगल महोत्सव के महेमान होकर, किस लिये यह अमंगल की आहुति ? एक ही उत्तम उपवन में एकत्रित होकर, कुवास की यह कुत्सित कहानी किस लिये ?

आइये, अमृत सरोवर में स्नान करें, शस्त्रों को समुद्र में फेंक दें । नीड़ के विहंग की तरह एक अवनि के सुखी दैवी निवासी बनें । इस प्रकार अगणित प्राणियों के लिये आशीर्वादरूप बनकर इस आनंदमयी, अमृतमयी, अनोखी अवनि को आनंदमय, अमृत से भरी और अनोखी बना दें !

* * * * *

५५. अभिलाषा

संसार का चंचल चक्र सनातन काल से चला आता है । उसका प्रारंभ किसने और कब किया, और उसकी पूर्णाहूति कब और किसके हाथ होनेवाली है, सो तो कौन जाने, परंतु यह चक्र अनवरत रूप से चलता रहता है । अनंत काल से संसार का सनातन, चंचल चक्र चलता रहता है ।

उसमें परिवर्तन करनेवाले, प्राण भरनेवाले, प्राणवान पुरुष भी प्रकट होते हैं; और उसके लिये अभिशापरूप बननेवाले, उसके नाश की नृशंस लीला करनेवाले, नराधम भी उसमें आते रहते हैं ।

एक ओर उसे सुखमय, शांतिमय, समृद्ध करने के प्रयत्न होते हैं, तो दूसरी तरफ प्रयत्नों का प्रतिकार होने से, मानव की समस्त शुभ साधनाएँ निष्फल बनती हैं । एक ओर वृष्टि के प्रारंभ से सभी सुधापूर्ण हुआ लगता है, तो दूसरी ओर तीक्ष्ण ताप से धरित्री के रहे-सहे रस-कस में भी वेदना की वीणा बजती रहै । एक तरफ माली बीज की सृष्टि करता है, वहीं दूसरी तरफ कराल काल जैसे किसी मानव के हाथों वह मिट्टी से मिला दिया जाता है ।

ऐसे परस्पर विरोधी प्रयत्न न जाने कितने काल से चलते रहते हैं । धरित्री का विष और महापुरुष-अवतारी पुरुषों का अमृत समाप्त होता ही नहीं । उनकी स्पर्धा अनादि काल से, सनातन समय से चलती आ रही है । अब तो अमृत की विजय हो, सुधासिंचन की साधना सफल हो, सर्वत्र और सर्व समय सफल हो – यही इच्छा है, अभिलाषा है ।

* * * * *

५६. आपकी स्मृति

आज इस खुले स्मित करनेवाले आकाश का अवलोकन करके, मुझे आपके अंतर की अलौकिकता की स्मृति हुए बिना नहीं रहती । वह अंतर ऐसा ही सुमधुर, सुखद और शांतिमय है । उसमें अशुद्धि का अंश भी नहीं दीखता । आपके उस अमृत आलोकित अंतर की स्मृति भी कितनी अधिक सुखदायक और शांतिकारक है !

आज इस खुले, बादल से विहीन व्योम को विलोककर, मुझे आपके बदन की स्मृति हुए बिना नहीं रहती । वह बदन भी ऐसे ही अनोखे, अलौकिक, असाधारण सौंदर्य से संपन्न है । उसमें कहीं असुंदरता का लेश भी नहीं दीखता । आपके उस स्नेह-सुधा सिंचन करनेवाले, वसंत के वेणुवादन-सदृश बदन की स्मृति भी कितनी अधिक सुखदायक और शांतिकारक है ?

आप दूर हैं, और हमारे बीच यह अनंत पर्वतमाला व्याप्त है, इसका मुझे पता है । आप दूर हैं, और हमारे बीच सैंकडों सरिताएँ, सागर और स्रोत सोये हुए है, यह मैं जानता हूँ । फिर भी, कल्पना के पंख पर बैठकर, कविता की कुसुममाला के साथ, आपके पास पहुँच जाता हूँ । कोटि-कोटि कामदेव की कमनीयता को भी तुच्छ साबित करनेवाले आपके रुप की कमल-रसवाटिका में, मैं भ्रमर बनकर गुंजार करता हूँ, और आपके रससरोवर-सरीखे हृदय पर रास-क्रीडा करता हूँ ।

आपकी दृष्टि के दैवी आस्वाद का ही अनुभव यह आकाश करता है, और आपके रसामृत का पान करता हुआ, आपको निर्निमेष देखा करता है । आपके सनातन सौंदर्य-रस में से उसे भी सुंदरता तथा तृप्ति मिलती है । आपका जगत आपके दर्शन से अति नवीन बनता है – मेरी कविता की तरह आपके श्रीचरणों में समर्पित बनने में गौरव मानता है ।

* * * * *

५७. किस बात की कमी

आपकी क्षेममयी छत्र-छाया से जो संपन्न होता है, आपके अमृतवर्षण करनेवाले अभय करकमल से जिसका मस्तिष्क मण्डित बनता है, उसे इस भवाटवी में क्या भय, किसकी चिंता और किस बात की कमी है ?

आपकी सुधावर्षिणी दृष्टि जिसकी दृष्टि से मिल जाती है, तथा आपकी आत्मा के साथ आत्मा का अनुसंधान अथवा एकत्व साधकर जो शान्ति का सनातन गीत गाता है, उसे इस भवाटवी में क्या भय, किसकी चिंता, किस बात की कमी है ?

आपके सुखमय सहवास-सरोवर में जो सदाके लिये स्नान करता है; आपके प्रेम-पीयूष के पान से जिसका प्राण प्रफुल्लित, परमतृप्त, पावन बना रहता है; उसे इसी भवाटवी में क्या भय, किसकी चिंता, किस बात की कमी है ?

आपके गौरव-गीतों के गहन में जो आकंठ डूब जाता है, और आपकी कृपा के कल्पद्रुम के नीचे अपनी कामनाएँ कृतार्थ करता है, उसे इस भवाटवी में क्या भय, किसकी चिंता, किस बात की कमी है ?

आपके रति से भी अधिक आकर्षक रूप के पीछे जिसका हृदय समर्पित हो जाता है, जिसका प्राण-भ्रमर आपकी काया के कोटि-कोटि कमल पर केलि करके कल्याण की कविता गाता है, उसे इस भवाटवी में क्या भय, किसकी चिंता, किस बात की कमी है ?

उसे ग्रहों की क्या चिंता, और उसको कुदरती कोप भी क्या कर सकता है ? उसे प्रारब्ध की पीड़ा कहाँ रही, और कर्मफल भी उसे कैद कैसे कर सकते हैं ? जो आपके चंदन-चर्चित, चारु चरणों में चित्त को चिपकाकर श्वास लेता है, अपना सब कुछ आपको अर्पण करता है, वह तो हमेशा के लिये निर्भय होता है, निश्चिंत बन जाता है; उसे किस बात की कमी रहती है ?

* * * * *

५८. अमावस की अँधेरी रात में

अमावस की अँधेरी रात को, अर्णव-तट के एकाकी आवास में हमारी आँखे एक हुई । आपके तेजोमय मधुर मुख को देखकर मेरा प्राण प्रसन्नता से पुलकित बनकर नाच उठा । करोड़ों कवि इकट्ठे मिलें तो भी, आपकी काया की कमनीयता की कविता नहीं कर सकते; फिर मैं उसका वर्णन किस प्रकार कर सकता हूँ ।

आपके अमीमय आलिंगन से अंतर एकता के आलाप से आप्लावित बना । मैंने आपको प्रेम से परिप्लावित बनकर पूछा - 'आप मुझे चाहते हैं ? सचमुच अपना मानते हैं ?'

आप निरुत्तर रहे । मैंने पुनः पूछा तो आपके मुख पर संकोच छा गया । आपके मधुमय मुख को मेरे हृदय पर रखकर आपने मुझे वाणी से अव्यक्त फिर भी वाणी से भी अधिक विशदता और विस्तार से समझ में आनेवाला प्रत्युत्तर दिया ।

आपकी आँखोंमें से अंतर मानो उमड़ पडा और कहने लगा - 'आपके अलावा अन्य किसे चाहूँ ? दूसरा कोई भी चाहने योग्य है क्या ? आपके सिवा और किसे चाहूँ ?'

अमावस की अँधेरी रात में, अर्णव-तट के एकाकी आवास में, जो प्रेम की वर्षा हुई, वह समस्त जीवन में सुख की सृष्टि कर गयी; जीवन में कुछ जीने लायक भर गई ।

अमावस की अँधेरी रात मेरे लिये प्रेरक पूर्णिमा हुई ।

* * * * *

५९. संगीत-बिन्दु

आकाश के अंतर को एकाएक न जाने क्या हुआ कि सूर्य का प्रकाश उसके अंदर छिप गया और भरी दोपहरी में संध्या का दृश्य उपस्थित हो गया !

बादल की विशाल सेना उस पर इकट्ठी हो गयी, गडगड़ाहट का प्रारंभ हुआ, चपल चित्त की चपला चारों तरफ चमकने लगी । आकाश के अंतर को एकाएक न जाने क्या हुआ कि पूनम के स्थान पर अमावस की सृष्टि हुई ।

वर्षा की धारा अपने स्नेह संदेश के साथ धरती पर ढलने लगी । धरती उस अनुराग से आनंदित बनी । उसके अंतःस्तल में वसंत जाग उठा; प्रेम की वेणु बज उठी । आकाश के अंतर को एकाएक न जाने क्या हुआ जिससे उसके अणु-अणु में आज आह्लादक सितार झनझना उठा ।

आपको देखकर भी मेरे अंतराकाश में उसी तरह स्नेह के बादल उमड पडे हैं और वर्षा का आरंभ हुआ है । उसके अणु-अणु में अमृतमयी वीणा बज उठी है, वसंत जाग उठा है । आपके दर्शन से उसी प्रकार मेरे जीवन में वसंत जाग उठा है ।

मेरी कविता उसका अल्पाभास मात्र है; उसके अस्त-व्यस्त संगीत-बिंदु है ।

* * * * *

६०. कवि को

किसने किये हैं पूर्व और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण के ये भेद ? विशाल व्योम के सदृश विश्व के विशाल वातावरण को वाड़ाबंधी करके किसने विभक्त किया है ? एक ही अवनि के अर्णव में अभेदभाव का विस्मरण करके अनेकानेक घाट किसने बनाये हैं ? एक ही माता और एक ही पिता के परिवार के अंदर अनेकत्व की अक्षरावली का आलेखन किसने किया है ?

संसार सबका है, और संस्कृति सबकी है । संपत्ति सबकी और सुख की खानें भी सबकी है । ये सब एक ही संगीत-समारोह के साधन अथवा साज हैं । अथवा अन्य शब्दों में कहें तो एक ही सितार के सुरीले संगीत-स्वर है । एक ही रवि की कोटि किरणें, एक ही कमनीय कमल के अलग-अलग दल, एक ही वायु की ये सब ललित लहरें, एक ही आकाश की तेजस्वी तारानगरी – इनके बीच देश और काल के, उत्तम और अधम के भेद किसने किये ? वर्ण और रंग के भेद किसने किये ?

धरती की सभी संतान एक हैं और धरती के सर्वस्व के वे सभी अधिकारी हैं; ऐसे नित्यनवीन आह्लादक अनुप्राणित करनेवाले आलाप से इस वायुमंडल को व्याप्त कर दे ओ संगीतकार ! अनेकता के अंदर रहनेवाली एकता और विसंवाद के बीच बसनेवाले संवाद की और अंगुलि-निर्देश कर दे ! विश्व के विषमय वातावरण को उसी प्रकार, ओ कविराज ! अमी से भर दे, उसमें संजीवन धर दे !

* * * * *

६१. कहोगे कौन है ?

कुंज में कूजन करती कोकिला के कंठ से अभिभूत करनेवाला कौन है ? वही तुझे आकर्षित करता है; तेरे कलेजे को झंकृत करके हमेशा के लिये कैद करता है । कुंज में कूजन करती कोकिला के कंठ से अभिभूत करनेवाला कहोगे कि कौन है ?

परिमल से परिप्लावित, प्रफुल्ल पुष्पों की पंखुड़ियों पर, प्रेम के पवित्र परमाणु को प्रकटाकर, तुझे प्रसन्नता से परिप्लावित करनेवाला कौन है ? वही तुझे परिप्लावित करता है तथा तेरे प्राण को प्रेममय करके प्रभुता से भरता है । परिमलभरे, प्रफुल्ल पुष्पों की पंखुड़ियों पर, प्रेम के पवित्र परमाणु को प्रकटकर, तुझे प्रसन्नता से परिप्लावित करनेवाला कहेगा कौन है ?

सरिता, सागर और स्रोत के सुमधुर सलिल के स्वर्गीय संगीत का श्रवण कराते हुए स्नान करानेवाला और सुख-शांति में नहलानेवाला कौन है ? वही तुझे स्नेह की स्वर्गीय सुधा में स्नान कराता है और तेरे सर्वस्व को सनातन सुख से समलंकृत करता है । सरिता, सागर और स्रोत के सुमधुर सलिल के स्वर्गीय संगीत का श्रवण कराते हुए स्नान करानेवाला और सुख-शांति में नहलानेवाला कहेगा कौन है ?

व्योम के विशाल वितान पर, अभ्र के असाधारण आसन पर आसीन होकर, अनुराग की अभिव्यक्ति करनेवाला कौन है ? वही तेरे प्रति प्रेम को प्रकट और प्रसारित करता है और तेरे अणु-अणु को अलौकिकता से भरता है । व्योम के विशाल वितान पर, अभ्र के असाधारण आसन पर आसीन होकर, अनुराग की अभिव्यक्ति करनेवाला कहेगा कौन है ?

बालकों की तोतली बोली में, स्नेहीजन के सरस, शीतल, सुखप्रदायक स्पर्श में, अनेकों के अमृतमय बेजोड़ नेत्र अथवा कुदरती की कलात्मक क्रिया में अपना पुरातन प्रेमपूर्ण परिचय करानेवाला कहेगा कौन है ?

वही अपने प्रेम की प्रबल प्रतिध्वनि के द्वारा हृदय को रागमय, रस-सभर करता है । यदि इतना समझ में आ जाय तो जीवन ज्योतिर्मय, नवीन बन जाय, अमावस के अँधेरे आवास में पूनम के प्रभात का प्राकट्य हो जाय; ज्ञान का शीतल वायु प्रसरित हो जाय, साधना समाप्ति पर पहुँच जाय, और क्लेश मिट जाय ।

* * * * *

६२. मेरी कलात्मक कविता

आपकी कोट्यानुकोटि कल्पना में कैद न होनेवाली कलात्मक है – आपके ही प्रसाद रूप में प्राप्त मेरी कविता । उसके सामने कोटि कविजनों की कविता भी आपको तुच्छ लगेगी । आपके अंतर में आह्लाद भरकर वह आपको सनातन स्वर्गीय सुख पहुँचायेगी । उसकी अक्षय आराधना से आपको आराम मिलेगा ।

कविजन तो कितने ही हो गये हैं, और अनंत आकाश के तारक-जैसे दूसरे कितने ही होते रहेंगे । उनकी कविता आपको डुलायेगी, नचायेगी, और शायद मुग्ध भी करती रहेगी । उनकी कविता आपको आश्चर्यचकित भी कर देगी; किन्तु काल का भी मात करनेवाली, कलेजे की कुसुममाला-जैसी मेरी कविता आपके कलेजे का टुकड़ा बन जायगी । और आपके जीवन की दीपमाला बनकर, आपके पथ पर प्रकाशित रहेगी ।

वह अमरापुरी की अप्सरा जैसी आकर्षक, देव के दूत-जैसी दैवी नहीं लगे, तो हर्ज नहीं । उसके कलेजे में करोड़ों कुसुमों की कमनीयता अथवा आकाश की अनंतता नहीं मिले तो भी परवाह नहीं । वह तो है इस धरती और उस पर बसनेवाले आपके अनन्य आराधक की अंजलि और उसके स्नेह की सुरावली । आपके प्राण को पुलकित तथा प्रेम से परिप्लावित करने के लिये ही उसका प्राकट्य हुआ है । आपकी पृथ्वी को प्रेमपीयूष से पावन करने में ही उसकी कृतार्थता है । उसको आप अपनी समझ लेंगे तो भी पर्याप्त होगा ।

कविजन तो कितने ही हो गये हैं, और अम्बुधि की अगणित उर्मियों की तरह होते रहेंगे । उनकी कविता चाहे जैसी होगी; किन्तु मेरी कविता में आप ऐसी मधुर सुधारसमयी दीप्ति भर दो कि उसके आस्वादन से अखिल अवनि अमृतमय और एक बन जाय तथा सहज सुख की साँस ले । मानव के मन को वह मधुमय कर दे एवं प्राण को प्रकाश से भर दे । वह आपके संसार की सेवा-सामग्री बनकर अपना समग्र धन आपके श्रीचरणों में समर्पण कर दे । उसके आस्वादन से आत्मा में अखंड आनंद का अनंत अर्णव उछलने लगे, और जीवन को ऐसी माधुरी मिले जो मिटे नहीं, मुरझाये तक नहीं, और दुःख तथा दर्द के दावानल में भी दिल का परित्याग न करें ।

* * * * *

६३. आकांक्षा की अभिव्यक्ति

विपत्ति की वर्षा बरसे, मस्तक पर घोर गड़गड़ाहट करते घन गरजें, तो भी मेरे मुखमंडल की मधुता मिटे नहीं, मेरे ह्रदय का रसभंडार घटे नहीं; मेरा मेघधनु-सद्दश स्वाभाविक स्मित मिटे नहीं !

चिंता की चिता चारों ओर प्रज्वलित हो उठे, आपत्ति के अंगार आकस्मिक रूप से आ मिलें, तो भी मेरे मुखमंडल की मधुता मिटे नहीं, मेरे ह्रदय का रसभंडार घटे नहीं; मेरा मेघधनु-सद्दश स्वाभाविक स्मित मिटे नहीं !

निष्फलता और निराशा का नर्तन हो, अशांति और वेदना मेरे आसपास अपना करुणातिकरुण गीत गायें, तो भी मेरे मुखमंडल की मधुता मिटे नहीं, मेरे ह्रदय का रसभंडार घटे नहीं; मेरा मेघधनु-सद्दश स्वाभाविक स्मित मिटे नहीं !

अमावस के अपार अंधकार के आवरण सर्वत्र उमड़ पड़े, प्रकाश की किरणें और उससे आलोकित आवास अथवा प्रवास का पथ भी न दिखाई दे, तो भी मेरे मुखमंडल की मधुता मिटे नहीं, मेरे ह्रदय का रसभंडार घटे नहीं; मेरा मेघधनु-सद्दश स्वाभाविक स्मित मिटे नहीं !

प्रियजन भी विदाय ले लें, स्नेही स्नेह तथा साथ छोड़ दें, स्वागत करनेवाले और स्तुति-गीत गानेवाले अपमान और अभिशाप देने लगें, तो भी मेरे मुखमंडल की मधुता मिटे नहीं, मेरे ह्रदय का रसभंडार घटे नहीं; मेरा मेघधनु-सद्दश स्वाभाविक स्मित मिटे नहीं !

चारों ओर चाहे कीचड़ हो, और निर्जन सरोवर में कमल बनकर साँस लेना और स्नान करना पड़े, तो भी मेरे मुखमंडल की मधुता मिटे नहीं, मेरे ह्रदय का रसभंडार घटे नहीं; मेरा मेघधनु-सद्दश स्वाभाविक स्मित मिटे नहीं !

मेरा जीवनरस कभी भी न घटे, विश्वास न टूटे, तेरे साथे का सनातन, स्वर्गीय, सुधासंपूर्ण संवाद न छूटे और स्वप्न में भी न छूटे । ओ मेरे महाकवि ! मेरे करुणा, प्रेम, प्रशांति तथा तितिक्षा के असाधारण ऐश्वर्य को कभी कोई भी न लूटे !

* * * * *

६४. स्नेह के स्वरूप

माता की मधुमयी मुखाकृति में, पृथ्वी पर प्रकट होकर, सबसे पहले उसने तुझे अपने दर्शन का दैवी आनंदानुभव प्रदान किया है, मैं जानता हूँ । तुझे उस अदभुत अनुभव का अवसर नहीं मिला ?

उसका पयपान करके, उसकी स्नेह-सुधासरिता में सुखपूर्वक स्नान करके, उसके अनुराग को अंतर और अंग-अंग में भरकर, इस पावन पृथ्वी पर तू प्रस्थान कर चुका है, मैं जानता हूँ । तुझे उसका विस्मरण हो गया है ?

सूर्योदय होने से पूर्व, प्रभात के पक्षी के सुमधुर स्वर से भी अधिक सुमधुर स्वर से, उसने तेरा स्वागत किया है, और अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति की परवाह किये बिना, मधु से मधु ममता से, तेरे तन-मन में, अरे, समस्त जीवन में, सुधासिंचन किया है, मधु से मंडित किया है, मैं जानता हूँ । तुझे उस स्नेह की स्मृति है ?

और पश्चात्, प्रियतमा के एक अन्य रूप में, अभिनय के नवीन, अलौकिक प्रकाश-रश्मि फैलाते, जीवन के रंगमंच पर उसने प्रवेश किया है । उस पात्र के रूप में प्रवेश करके अपनी समस्त संपत्ति का तुझे समर्पण किया है; तेरे जीवन को ज्योत्सना से भी अधिक आह्लाद से भरा है; मैं जानता हूँ । उस असाधारण अनोखे अनुभव की तुझे विस्मृति हो गयी है ?

स्नेह के उन सर्वोत्तम स्वरूपों में तू उसकी तनिक भी झाँकी कर सका होता, ममता और मधुरता के मंगल मधु-छत्ते के मधु को लेश भी जान सका होता, तो ईश्वर का इन्कार नहीं करता, ईश्वर से दूर नहीं रहता; ईश्वर के श्रीचरणों में तेरा जीवनधन धरता, और मृत्यु के मुख में नहीं रमता ।

* * * * *

६५. महागीत का गायक कवि

इस अनंत अवनि के किस आकाशी आसन पर आसीन होकर, तू अपना मधुमय महागीत गा रहा है, मेरे महाकवि ! जिसकी प्रतिध्वनि पृथ्वी में पीयूषरूप से सर्वत्र छा रही है ? किस अमीमय आवास में आरामपूर्वक आसीन होकर, तू अपना मधुमय मंगल गीत गा रहा है ?

उसके सुधापूर्ण श्रवण से उषा, संध्या और रात तथा दिन मानो समाधिमग्न हुए-से, न जाने कितने ही काल से चक्कर काटते रहतें है, और तारे, चंद्र तथा सूर्य संजीवन अथवा प्रेरणा पाकर पृथ्वी को प्रकाश से भरते हैं । सागर उसके स्वर्गीय स्वाद से सदा संवादी बनकर मस्ती में महालता है; अभिसारिका-सरीखी सरिताएँ आगे बढ़ती हैं । अनंत आकाश एकदम आश्चर्यचकित होकर, उसके आस्वाद में अंतर को ओतप्रोत करके, अनंतकाल से खड़ा है; प्रेममग्न पृथ्वी प्रसन्न रूप से परवश होकर पड़ी है; और पर्वत उन्नत-मस्तक से उसकी दिशा की ओर देखा करते हैं । उनकी तल्लीनता नहीं टूटती ।

इस सुधा के सागर-सरीखी स्वादु सृष्टि के किस सुखमय स्वर्ण-सिंहासन को सुशोभित करके तू अपना मधुमय गीत गा रहा है, मेरे महाकवि ! जिसकी प्रतिध्वनि पृथ्वी में पीयूषरूप से सर्वत्र छा रही है ? किस सुखमय स्वर्ण-सिंहासन को सुशोभित करके, अपना मंगल मधुमय गीत गा रहा है ?

पद्म प्रकट होते हैं, पुष्प प्रफुल्लित बन जाते हैं, पवन उससे प्रमत्त बनकर तेरी पवित्र पदरज को पाने के लिये प्रयाण करता है । जड़ और चेतन में सर्वत्र उसकी संमोहिनी फैल जाती है । बालकों की बोली, केलि और आँख में उसका अमृत बहता है; संसार में उसके स्वर सुंदरता, सुमधुरता तथा सत्य का सर्जन करके, अपने पुरस्कर्ता की पुरातन कथा कहते हैं ।

इस अनंत अवनि के किस आकाशी आसन पर आसीन होकर, तू अपना मधुमय महागीत गा रहा है, मेरे महाकवि ! जिसकी प्रतिध्वनि पृथ्वी में पीयूषरूप से सर्वत्र छा रही है; किस अमीमय आवास में आरामपूर्वक आसीन होकर, अपमा मधुमय मंगल गीत गा रहा है ?

कवि के द्वारा कविता में इतना कहे जाते ही, रातरानी की रसीली सौरभ-भीनी समीर लहरी पर सवार होकर कवि-सम्राट ने कहा – अरे मेरे कृपापात्र कवि ! तुझे पता नहीं ? तेरे नजदीक से नजदीक, प्राणों से भी समीप, तेरे अंतर के आसन पर आसीन होकर, मैं अपना महागीत गाया करता हूँ । और तुझे शायद पता नहीं होगा किन्तु तेरे ही स्नेह-संगीत में से संजीवन पाकर, उसीके सुधारस से संसार में सरसता भरता हूँ ! तेरे ही अंतर के अलौकिक, असाधारण, अनोखे, अमीमय आसन पर आसीन होकर मैं अपना मधुमय, महामहिमामय, महागीत गाया करता हूँ !

* * * * *

६६. कवि का गीत

असत्य और अन्याय के नहीं, किन्तु सत्य और न्याय के बल की ही विजय होगी । शोषण, त्रास और जोर-जुल्म नहीं, किन्तु पोषण, सहानुभूति, सहकार के बल ही सफल बनेंगे । अशांति नहीं, शान्ति; और अंधकार नहीं किन्तु प्रकाश ही सनातन है – आखिर उन्हीं की महिमा विश्व में व्यापक होगी और दिशा-प्रदिशा में व्याप्त होगी । असत्य और अन्याय के नहीं, सत्य और न्याय के ही बल विश्व में विजयी होंगे ।

कष्ट, क्लेश, कालिमा नहीं, परंतु सुख, संपत्ति, शुद्धि को ही अंत में सफलता मिलेगी । प्रतिकूलता नहीं किन्तु अनुकूलता के उपर ही विजय-वृष्टि होगी । मानव-मन की मैली मुराद, और उसे पूरी करने के करोड़ों प्रयत्न, नाकामयाब होंगे । उसकी अहंकारोत्पन्न, आडंबरपूर्ण, अमंगल आकांक्षा असफल होगी – एक आपकी ही इच्छा, आकांक्षा, प्रेरणा, योजना का जय-जयकार होगा । घड़ी-दो घड़ी चमककर चलनेवाले तुषार-बिन्दु की तरह मानव की समुची बाजी बिगड़ जायेगी, बेहाल बनेगी और आपकी बाजी को ही विजय मिलेगी । असत्य और अन्याय के नहीं किन्तु सत्य, नीति, न्याय के बलों को ही विजय वरण करेगी ।

अंधकार के अनेकानेक आवरणों से आवृत अवनि आखिर अलौकिक आलोक से आलोकित बनेगी; प्रेम के प्रभाव से पृथ्वी पावन होगी; सदाचार, सहयोग की स्वर्गीय, सुखदायक, शांतिकारक सौरभ सर्वत्र फैल जायेगी, और दानवता नहीं किन्तु मानवता और बैर नहीं किन्तु प्रेम का ही जय-जयकार होगा । मानव के मन को मार डालने के, उसकी आत्मा को अवरुद्ध करने के, आतंकित अथवा अपमानित बनाने के, श्वास रोककर मारने या कैद करने के, तथा प्रभुता की अपेक्षा पशुता में परिवर्तित करने के, प्रखर से प्रखर प्रयत्न भी निष्फल बनेंगे, मिट्टी में मिलेंगे । मानव की आत्मा आझाद होकर, सब प्रकार से स्वतंत्र और समुन्नत बनकर ही, शांति का श्वास ले सकेगी । असत्य, अनीति और अन्याय के नहीं किन्तु सत्य, नीति और न्याय के बल ही अंतिम जंग जीत सकेंगे ।

निराशा मिटेगी, अंधकार का अंत आयेगा, अश्रु के अर्णव सूख जायेंगे, पीड़ा के प्रखर पारावार के भी पार पहूँचा जायेगा, प्रवास के पथ पर पावन प्रकाश प्रसरित होगा । नवजीवन के संदेशवाहक बनकर पक्षी पुकारेंगे; और चमेली, चंपा, मालती, मोगरे की महक से मादक मातरिश्वा की ललित लहरी सर्वत्र फैल जायेगी । रात्रि पूरी होगी; प्रभात प्रकट होगा । समीपस्थ सरोवर में स्मित करते कमलों की तरह, सहस्त्र-सहस्त्र कमलों की कमनीयता से, संसार सुशोभित बनेगा । असत्य और अन्याय के नहीं किन्तु सत्य और न्याय के बल की ही विजय होगी ।

पास के पर्वत के पीछे से उदित होते प्रभाकर को देखकर, कवि का कोमल, अनुराग तथा जादूभरा कलेजा कविता में उसी प्रकार बोल उठा और कवि ने उसका गीत गूँथा ।

* * * * *

६७. महोत्सव का आनंद

सुख-शांति के सर्वोच्च सिंहासन पर बैठकर आज तो कृतार्थता का गौरव-गीत गा रहा हूँ । अंतर में आनंद है और प्राण में प्रकाश । रोम-रोम में रस के रास हो रहे हैं । अंग-अंग में अलौकिकता की आरती का आलोक; दृष्टि में दिव्यता; वाणी में प्यार की वर्षा; स्पर्श में सुधासिंचन; और श्रवण में तुम्हारा संगीत-स्वाद । तुम्हारे प्रेमपीयूष से पुलकित, प्रसन्न, पावन प्राण तुम्हारी कृतज्ञताकी कविता करते रहते हैं । कोई बंधन नहीं, शोक नहीं, चिंता या व्यथा नहीं, और नहीं है कोई भय । स्वतंत्रता और समुन्नति के स्वर्गीय सिंहासन पर बैठकर, जीवन-साफल्य के सुस्वर छेड़ रहा हो; संसार के सफर के साफल्य का सनातन संगीत छेड़ रहा हो ।

इस आस्वाद में ओतप्रोत बनकर मेरा सब कुछ सफल और धन्य हुआ है, इसमें संशय नहीं; किन्तु पृथ्वी में पीड़ा है, दर्द है, दुःख है, अशांति है, बंधन है और वेदना की वीणा बजती है, तब केवल मेरे ही जीवन के मधुमय महोत्सव की माधुरी मनाकर मैं बेठा नहीं रहूँगा; परंतु बद्ध पद्मदल को प्रकट करनेवाले सूर्य-किरण की तरह, जड़ को चेतन और नवजीवन का दान देनेवाली वसंत की तरह, अथवा स्वयं संतप्त बनकर बादल के रूप में रस की वर्षा करनेवाले सिन्धु की तरह, मेरा सर्वस्व लेकर, संसार की शुश्रूषा की शुरूआत करुँगा । और जगत में जब विष, विद्वेष, दुःख, दर्द, शोक, शोषण, बंधन, क्रंदन नहीं रहेंगे, तभी अपने महोत्सव को संपूर्ण समझूँगा, और आनंदित अतंर से कविता में करोड़ों की कृतार्थता भरूँगा । उस दिन को मैं अनंत आनंद में एकाकर बनूँगा ।

* * * * *

६८. बरसों पहले बजी बाँसुरी

बरसों पहले बजी बाँसुरी, वृंदावन की वाटिका और वृंदावन के वन को प्यार से भरकर विश्व में व्याप्त हो गयी । यमुना के जल, गोपी के गोदुग्धोज्जल मुखमंडल और कुंज-निकुंज पर जादू करती बाँसुरी फैल गयी । मुनि तथा मूर्ख के मन को भी मोहित कर गई । बरसों पहले बजी बाँसुरी, वृंदावन की वाटिका और वृंदावन के वन को प्यार से भरकर विश्व में व्याप्त हो गयी ।

कवियों ने कविता की, प्रेमियों ने प्रशस्ति धरी, आराधकों ने उसकी आरती उतारी; भावुकों ने भक्ति-भाव से भरपूर बनाकर, कथा में प्रस्तुत करके उसे अमरत्व प्रदान किया । मधु से भी मधुमयी, पीयूष से भी प्रसन्नताभरी, स्वर्ग से भी अधिक सुखमयी बंसी चेतन-निश्चेतन सबके आत्मा के लिये आशीर्वादरूप बनी । बरसों पहले बजी बाँसुरी, वृंदावन की वाटिका और वृंदावन के वन को प्यार से भरकर विश्व में व्याप्त हो गयी ।

सृष्टि में समाविष्ट होकर सुषुप्त रूप से रहनेवाली बंसी प्यार की वर्षा करती, सुख-शांति का सुधासिंचन करती, पृथ्वी के प्रत्येक परमाणु में प्रेम, प्रसन्नता, मधुता तथा मैत्री भरती, और अखिल अवनि को ऐक्य का अभिनव संदेश सुनाती एक बार फिर से बजी और विश्व के विषमय वातावरण में व्याप्त हो गयी । वसंत की तरह पृथ्वी को नवजीवन देकर और मनुकूल की मोहिनी बनकर सर्वत्र बजती रही !

ओ मेरे अंतर्यामी ! टूटे हुए तार उसके अमीमय आस्वाद से एक हों, विषमय वातावरण में प्यार की लहर चलें, और भेदभाव, भय, शोक तथा संताप का शमन हो जाय ! हृदय के विशाल वृंदावन में, प्रज्ञा के यशस्वी यमुना-तट पर, विशुद्ध वातावरण की कोमल, क्लेशरहित कुंज-निकुंज में, सदविचार, सदभाव की सौरभ से परिपूर्ण भूमि में, एक बार फिर से उस वेणु का वादन कर, ओ मेरे अंतर्यामी ! एक बार फिर से तेरे सुधामय स्वर्गीय स्वर से दिशा-प्रदिशा को भर, और सृष्टि को संपूर्ण रूप से सुखमय कर !

बरसों के बाद प्रकट हुआ कविता करनेवाला कोई कवि भले कहे कि बरसों पहले बजी विराट की बाँसुरी विश्व में व्याप्त हो गयी; उससे अखिल अवनि की भीति भाग गयी; सर्वत्र एकता हुई; पीड़ा से प्रज्वलित पृथ्वी उसके अपार पीयूष-पान से पुलकित, पावन, प्रसन्न, प्रेममयी बनी । बरसों के बाद प्रकट कविता करनेवाला कोई कवि भले ही कहे, बरसों पहले बजी विराट की बाँसुरी विश्व में व्यापक बनी और क्रान्ति करके चली गयी ।

* * * * *

६९. कवि-सम्राट की कविता

कवि के कवि, कल्पातीत, कवि-सम्राट की कविता बताओ तो कहाँ नहीं है ? उगती उषा और शांत होनेवाली संध्या के सुनहरे रंगो में उसीका रस फैल रहा है और दिन तथा रात के हृदय में उसीके आलाप का आविर्भाव हो रहा है ।

सागर, सरिता, स्त्रोत में उसीके स्वादु संगीत की सुरावली गूँज रही है, और पर्वत तथा पृथ्वी उसीके पीयूष-पान से पावन हैं । वृक्ष, वल्लरी, विटप पर उसीकी प्रतिध्वनि पड़ रही है और सुमन तथा समीर-लहरी उसीकी सौरभ से भरपूर हैं । व्योम की विशालता में भी क्या वही व्याप्त नहीं हो रही है ?

सूर्य और शशि को प्रकाश तथा पीयूष का प्रदान उसीने किया है, और नक्षत्र-मंडल में भी नवनीत उसीने भरा है । बादल बनकर वृष्टि के रूप में वही बरसती है, विलास करती है; और चंचल चपला बनकर चतुर्दिश चमकती है ।

मानव के मधुमय मुखमंडल में, उसकी अमृतमयी अनोखी आँखों में, प्यार की वेणु-जैसी वाणी में, सुधामय स्नेहसंपूर्ण स्पर्श में, आनंद और शोक में, उसकी अल्पता और असाधारणता में और उसके अनेकविध जीवन के प्रत्येक दिशा तथा प्रसंग में भी; उसीकी अलौकिकता अंकित हो रही है ।

ऐसा कोई काल या कोई स्थान नहीं, जहाँ उसका अमीवर्षण न होता हो । पृथ्वी के प्रत्येक परमाणु में उसीका प्रसरण और प्रकाश है । जिसके कलेजे में कविता है, उसे सदा के लिये कविता-ही-कविता है । कविता के नित्य आस्वाद से उसकी अंतरात्मा अहर्निश अमीमय, अलौकिक और आलोकित है।

* * * * *

७०. कृपा की कामना

मुझे आश्चर्य होता है, क्या आपके स्नेह के क्षीरसागर का सुधास्वादु सलिल समूचा सूख गया है ? क्या आपकी अहैतुकी अनुकंपा के अमीमय अर्णव में एकाएक भाटा आया है ? मेरे मानने में नहीं आता, किन्तु मन में विचारों के वैसे विविध विवर्त उठा करते है ।

आपके लिये मन में मनोरथों की मीनारें रचकर कविता के कमनीय कुसुमों से आपकी आराधना करता और प्राणों में प्रेरणा तथा प्रकाश भरता हूँ । जीवन का अनमोल अर्घ्य आपके श्रीचरणों में अर्पित करता हूँ और आपकी छत्रछाया में निश्चिंत होकर फिरता हूँ । प्रत्येक पल को मैंने आपकी प्रसन्नता की सामग्री के रूप में आपको समर्पित कर दिया है, और मेरे जीवन-सितार को आपके सुस्वर से सजाकर सार्थक किया है ।

ऐसा नहीं मानना – मैं अपने ही लिये आपकी कृपा-कामना करता हूँ । प्रभाकर का प्रकाश इसके अपने ही काम नहीं आता । चंद्र की चाँदनी चंद्र को चारु बनाने के लिये ही खर्च नहीं होती । सरिता के सलिल और सुमन की सुवास भी उन्हीं के लिये इस्तेमाल नहीं होती । इसी प्रकार, आपकी कृपा के परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाले महाप्रसाद से केवल मेरी ही क्षुधा शांत नहीं होगी, किन्तु समस्त सृष्टि को शांति मिलेगी; मेरा जीवन वड़वानल में भी अमृत का वर्षण करेगा और आपके अंतर को भी उत्सव के रंग में रंग देगा ।

* * * * *

७१. प्रीति और प्रसन्नता की कथा

कभी न मुरझानेवाली कीर्ति और महामेधावी को भी मात करनेवाली मेधा मिले; सबके उपर शासन करनेवाली सर्वोपरी शक्ति और संसारभर में सर्वश्रेष्ठ सनातन संपत्ति प्राप्त हो; अखिल अवनि में अतुलनीय और अनेकानेक को आश्चर्यचकित करनेवाला ऐश्वर्य और अष्टसिद्धि-नवनिधि से संपन्न सिद्धिबल की प्राप्ति हो; आपकी कृपा के परिणामस्वरूप जिन-जिन वस्तुओं की इच्छा हो, वे समस्त वस्तुएँ सुलभ हों; फिर भी क्या हुआ ?

जब तक आपके मुखमंडल के मधु से भी मधुर रस का पान नहीं किया और आपके स्वर्गसुख से भी अधिक सुखद, सर्वमंगल, शांतिमय, साहचर्य का सेवन नहीं किया, तब तक सर्व अपूर्ण है । ऐसी प्रतीति के परिणाम-स्वरूप ही, जीवन के अरुणोदय के समय, प्रतीचि के भाल पर उषा का कुमकुम था, और प्रभात की प्रथम पक्षी-पंक्ति अपने पुनीत प्रवास का प्रारंभ कर रही थी, उस समय, आपकी प्रसन्नता पाने और आपकी प्राप्ति करने के लिये मैं प्रयुक्त हुआ था ।

आज मैं आपको तो प्राप्त कर चुका, किन्तु आपकी प्रसन्नता के परिणाम-स्वरूप, और भी बहुत कुछ प्राप्त कर चुका हूँ, यह देखकर मेरा अंतर आनंदविभोर हो उठता है । प्रीति और प्रसन्नता के परम परिपाक की यह कथा आपके और मेरे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता । आपकी इच्छा हो तो जगत उसे भले ही जाने, एक बार फिर से जाने, और उसका अनुकरण करके मधु का आस्वादन करे !

* * * * *

७२. सदा के लिये

स्वागत के सुवासित सुमन के साथ, सुधामय वचन बोलकर, मेरा स्वागत नहीं करोगे, मुझे अपने अनुराग का अलौकिक असाधारण अर्घ्य नहीं दोगे तो भी, मैं तो सदा के लिये स्नेह के सुमन के साथ, अनुराग का अमृतमय अर्घ्य लेकर, तुम्हारे स्वागत के लिये तैयार रहूँगा; तुम्हारे मिलते ही अपना अनमोल जीवनधन अर्पित कर दूँगा ।

संध्या की अरुणिमा के सदृश सुमधुर, सुंदर स्मित के साथ, प्रशंसा के परिमल को प्रसरित करके मेरे लिये स्वर्गसुख से भी सुखद सुख की सृष्टि नहीं करोगे, और मुझे अपना मानकर मधुमय, सुखदायक आलिंगन का आनंद अर्पित कर संताप को शांत नहीं करोगे तो भी, मैं तो सदा के लिये संताप को शांति प्रदान करनेवाले स्मित और आलिंगन के आनंद-वर्षण की अपेक्षा के साथ, तुम्हारे लिये स्वर्गसुख से भी सुखमय सृष्टि का सर्जन करने के लिये तत्पर रहूँगा; तुम्हारे मिलते ही शाश्वत काल के लिये तुम्हारा बन जाऊँगा ।

मेरे जीवन की रक्षा कर, मेरे सर्वस्व को सुस्वादित बनाकर सभी ओर से मेरी संजीवनी बूटी नहीं बनोगे, और अपने हिय की हूक अथवा प्रत्येक अंग की ऊष्मा अर्पित करके, मेरे प्रेमप्रतीक-जैसे प्राण को अपने प्राण के साथ नहीं बुन लोगे तो भी, मैं तो सदा के लिये तुम्हारे हिय की हूक और अंग-अंग की ऊष्मा बनने को तैयार रहूँगा; तुम्हारे मिलते ही जीवन का आनंद प्राप्त करूँगा ।

प्रशंसा के पुष्पों से पंथ को पवित्र करने के बजाय मुझ पर पदप्रहार करोगे, और अश्रु का अंत लाकर, निराशा को नष्ट करने के बदले, अश्रुओं की माला और निराशा-पीड़ा का प्रसाद दोगे तो भी, मैं तो सदा के लिये तुम्हारी प्रतीक्षा के पावन पथ पर परिमल से परिप्लावित पुष्पों को बिछाता रहूँगा; तुम्हारे मिलते ही मेरी प्रशस्ति की पूजा अर्पित करता रहूँगा ।

अमृत के अभिषेक से अतंर को आनंदमय करने की जगह, मुझ पर विष की विकराल वर्षा बरसाओगे, तथा प्रकाशपुंज में प्रविष्ट कराने के बदले अंधकार के आवरण से अधिकाधिक आवृत करोगे तो भी, मैं तो सदा के लिये, अमृत के अनोखे अभिषेक के साथ, तुम्हारे अंतर को आनंदमय करने, तुम्हारे जीवन को ज्योति अर्पित करने को तैयार रहूँगा; तुम्हारे मिलते ही अपना जीवनधन अर्पण करूँगा ।

* * * * *

७३. महायज्ञ का आरंभ

समस्त सृष्टि की शांति, समृद्धि और सुख-प्राप्ति के लिये एक महायज्ञ का आरंभ हुआ है, ऐसे समाचार सुनकर मैं उसके दर्शन के लिये गया । एक ओर अनेक की संख्या में याज्ञिक आहुति दे रहे थे; जापक जप कर रहे थे; पाठ करनेवाले पंडित पाठ के पारायण में लगे थे; यजमान यशस्वी मुखमुद्रा से सब कुछ देख रहे थे । दर्शनार्थी उस दिव्य दर्शन से अपने को महाभाग मानते थे । राजनगर में महायज्ञ का आरंभ हुआ था ।

मैंने भी उस महायज्ञ का निरीक्षण किया । महायज्ञ का मंडप महामूल्यवान, मधुमय और मंगल था । मंडप के एक तरफ एकांत में कोई कवि विराजित था । उसके असाधारण आकर्षण से आकर्षित होकर मैं उसके पास पहुँचा किन्तु वह काव्य-रचना में तल्लीन था । कविता पूरी करके उसने मेरी ओर देखा तो मेरे हृदय में रस का एक रमणीय रेखाचित्र उत्पन्न हो गया । कविता के संदर्भ को समझने की मेरी जिज्ञासा के जवाब में, उसने कविता का कागज़ मेरे हाथ में रख दिया । उसमें लिखा था –

सृष्टि की समृद्धि, सुखमयता और शान्ति के लिये समस्त मानवों के महायज्ञ का आरंभ हो तो कितना अच्छा ? यज्ञ का वह आरंभ मन की मधुमयी मही में अथवा हृदयरूपी राजधानी में होगा । विवेकयुक्त वात्सल्य की उसमें विशाल वेदी बनेगी । अनेकविध अमंगल के अंत के लिये सत्कर्मों की अनंत आहुति अर्पित होगी । वेदी में कोई साधारण घृत, तिल या जौ नहीं होमें जायेंगे, किन्तु गौरव का घृत, तप तथा तितिक्षा के तिल, और जीवन को जलानेवाले जहर का होम किया जायेगा ।

परमात्मा की प्रसन्नता, अन्य के अभ्युत्थान के जप होंगे, और पर-पीड़ा मिटाने की, सबको समुन्नत तथा सुखी बनाने की प्रवृत्ति का पारायण होगा । उसकी सुवास सृष्टि में सर्वत्र फैल जायेगी; दुनिया देव की दया से दैवी बनेगी । सांसारिक शांति के उस महायज्ञ में यजमान के रूप में तथा याज्ञिक के वेश में सदा काम करने के लिये सबको मेरा आदरपूर्वक आमंत्रण है – संसार के समस्त देशों को !

* * * * *

७४. साधक को

महानद में मोती देरी से मिलते हैं साधक ! उसके अंतर के अंतरतम में अवगाहन करने पर, प्रखर परिश्रम के बाद मिलते हैं । उसके तटप्रदेश पर बैठे रहने से तो उसकी अलौकिकता का आभास भी नहीं मिलता ।

पृथ्वी में से पुष्प बाद में प्रकट होते हैं, साधक ! उसके उदर में सलिल-सिंचन करने से, बीज की सुचारु सुरक्षा से, प्रखर प्रतीक्षा के बाद प्रकट होते हैं । उसके पट पर बैठे रहने से तो उसकी सौरभ का भी स्वाद नहीं मिलता ।

वृष्टि के बादल को समय लगता है, साधक ! वारि को बादल बनने के लिये तीक्ष्ण ताप से तपना पड़ता है; मातृभूमि-जैसी मही का मोह छोड़कर, विशाल व्योम में विहरना पड़ता है । उसके बाद ही वृष्टि-वर्षण का लाभ मिलता है । ताप से तपने का इन्कार करने से, मोह में से मुक्ति पाने की आनाकानी करने से, वारि को वृष्टि का बादल बनने का अवसर ही नहीं मिल सकता ।

पृथ्वी के प्रकाशप्रदायक, पक्षी-कुल के प्रसन्नतादायक और जीवमात्र के जीवनपालक सूर्य का साक्षात्कार सहज में नहीं हो जाता, साधक ! आकाश उसके लिये रात्रिभर अनुरागपूर्ण आराधना में अंतर को ओतप्रोत करता है; तारकसमूह अश्रु की अंजलि अर्पित करता है । चंद्र चारु स्वरूप में अपने प्राणों की पूजा का समर्पण करता है और आसपास के अंधकार में आशा को अक्षय रखकर, प्रखर प्रेम से परिप्लावित होकर, पूजा तथा प्रतीक्षा करता है । उषा के उन्माद की भी उपेक्षा करके अपने प्राणों की प्रतिध्वनि सुनाता रहता है । उसकी साधना तभी सफल बनती है ।

* * * * *

७५. अरुणोदय की प्रार्थना

विज्ञान के विनाशक शस्त्रों के समूह-पर-समूह संगृहीत होते जाते हैं । मानव का मन शांति की सुहावनी बातें तो करता है, परंतु अशांति की आराधना के आरंभ में से किसी प्रकार पीछे नहीं हटता । संहार के सर्वोत्तम शक्तिशाली साधनों का आविष्कार करके भी उसे संतृप्ति नहीं होती । सर्वसंहार की उत्तरोत्तर शक्तिशाली शस्त्र-संशोधन-साधना में वह इसीसे संलग्न है । उसकी क्षुधा की तृप्ति कब होगी, कोई भी नहीं कह सकता ।

ऐसे असाधारण समय में श्वास लेने का मुझे सौभाग्य मिला है सो यह आकस्मिक है अथवा इसके पीछे अन्य असाधारण आशय है ? वह अकस्मात् तो नहीं हो सकता और नहीं है, इसकी मुझे प्रतीति है । इसके पीछे के असाधारण आशय का मुझे ज्ञान है ।

इसीलिये मेरी प्रेमपूर्वक प्रार्थना है कि सर्वसंहार की साधना शांत हो जाय, शस्त्रों के समूह निष्फल बन जाय, और मानव का मलिन मन मलिनता से मुक्त होकर, अशांति के स्थान पर शांति के संगीत-स्वर में प्रवाहित हो जाय, ऐसा अनुग्रह कर दो, और उसके लिये मेरे जीवन का उपयोग कर लो ! धिक्कार, भय, लालसा, स्वार्थ, शोषण, वैमनस्य और राग-द्वेष से मुक्ति पाकर मानवजाति सुख-शांति के पीयूषपान से पावन हो जाय, ऐसा अलौकिक अरूणोदय मेरे जीवनकाल के दरम्यान ही कर दो !

* * * * *

७६. सफर का संदेश

अग्नि की अनेकानेक, जाज्वल्यमान ज्वालाएँ निर्माण कर दी जाय तो भी, क्या उनसे सूर्य की तुलना हो सकती है ? सैंकडों सरिताओं और स्त्रोतों के सलिल का सुविशाल संग्रह किया जाय तो भी, क्या उसे समुद्र के समान कहा जा सकता है ? अनंत फौव्वारों की रचना की जाय तो भी, क्या उनसे बरसती बरसात की बराबरी हो सकती है ? और असंख्य पत्थरों की पंक्ति बना दी जाय तो भी, क्या उसे पर्वतराज हिमालय की उपमा दी जा सकती है और उसे क्या हिमालय का प्रभाव भी प्राप्त हो सकता है ?

इसी प्रकार संसार के समस्त सौंदर्य के समुच्चय को भी आपके स्वरूप के स्वाभाविक सौंदर्य के साथ तुलना नहीं की जा सकती । महीमंडल की मधुरता का मधु-छत्ता बनाया जाय तो भी, वह आपके मधुमय मुखमंडल की मधुरता की बरोबरी नहीं कर सकेगा । सृष्टि की संपूर्ण सुवास का संग्रह भी, आपके अंग की सर्वोत्तम सर्वविलक्षण सुवास की सहस्त्रांश का भी प्रसार नहीं कर सकेगा । आपके प्रेम के परम पारावार के सामने, पार्थिव प्रेम के अपार प्रवाह भी निरर्थक हो जाते हैं । आपके स्नेह के सुधा-भरपूर सरोवर के स्नान का सौभाग्य जिसे मिला है, उसे ही उसका अनुभव होता है; और वह तो अपने को आपके श्रीचरणों में पूर्ण समर्पण कर देता है ।

सृष्टि की सुखमय सफर का इतना संदेश संसार को देता जाऊँगा तो भी, उससे मुझे संतोष होगा, संसार की सच्ची सेवा का संतोष मिलेगा ।

* * * * *

७७. अंतर्यामी को अर्ज

जो जड़ता में जल रहे हैं, सुख-समृद्धि, शांति और विद्वत्ता से वंचित हैं, प्रकाश के पतले किरण भी जिनके पास नहीं पहुँचते, और जो अश्रु, आह, आक्रंदन, अपमान और अभाव में जी रहे हैं, उनको मदद करनेवाले मानव तथा मानवसमाज को जन्म दो, अधिक से अधिक संख्या में जन्म दो; ऐसी मेरी अर्ज है । अंतर के अंतरतम के ओ अंतर्यामी ! अर्ज है !

जो रात और दिन प्रस्वेद, परिश्रम तथा पीडा के बीच श्वास लेते हैं, दूसरों की सुख-समृद्धि के लिये शरीर को सूखा देते हैं; किसीकी महामूल्यवान महलात के मजदूर अथवा नींव के पत्थर बनकर, सम्मान की सुमनमाला और मोटाई के मानपत्रों से दूर-सुदूर रहते हैं; जो अत्यंत अल्प लेकर बदले में अधिक से अधिक बलिदान देते हैं; और किसी कवि की कविता अथवा कहानीकार की कथा ही जिनका लाभ लेती है; उनको सहायता करनेवाले, उन्हें सम्मान देनेवाले, अथवा स्वागत के सुखद शब्द सुनानेवाले मानव और मानवसमाज को जन्म दो, अधिक से अधिक संख्या में जन्म दो; इतनी मेरी अर्ज है । अंतर के अंतरतम के ओ अंतर्यामी ! अर्ज है !

जीत की जयमाला दूसरे को मिलती है, किन्तु वे तो दुर्गम मोर्चा बनाकर मैदान में ही मर जाते हैं । किसी कमनीय कलाकौशलवाले कुसुमबाग के बीज बनकर बैठ जाते हैं, और उनकी रमणीय रचना का मान दूसरे ही पा लेते हैं । प्रवास के पुनीत पथ को पर्वतीय पत्थरों से वे तैयार करते हैं; और दूसरे उस पर प्रसन्नतापूर्वक प्रवास के कदम भरते हैं । फिर भी जिनका महत्व नहीं माना जाता; और जिनको देखकर नयन में नेह लानेवाले भी कोई विरले ही मिलते हैं । उनको मदद करनेवाले, महत्व के माननेवाले, नेह में निमज्जन करानेवाले मानव और मानवसमाज को जन्म दो, अधिक से अधिक संख्या में जन्म दो; ऐसी मेरी अर्ज है । अंतर के अतंरतम के ओ अंतर्यामी ! अर्ज है !

जिनके शरीर पर पर्याप्त वस्त्र नहीं है, जिनके आवास के लिये सुचारु साधन नहीं है; और जीवन की बात तो अलग रही, मरने के बाद भी जिनकी उत्तरक्रिया के लिये पर्याप्त पदार्थ नहीं हैं; जो पकाकर भी भूखे पेट सो जाते हैं, बुनकर भी लज्जा को ढके बिना ही चलते हैं, निर्माण करके भी निर्मित वस्तु के बिना रह जाते हैं; जो नम्र होने पर भी निरक्षर है, स्वमानी और स्वाश्रयी होने पर भी समृद्धि से हीन हैं और स्वतंत्रता के पूजारी तथा प्रेमी होने के बावजूद भी पराधीन, पददलित और पिछड़े हैं; उनको सहायता पहुँचानेवाले, स्वतंत्रता की सुवास प्रदान करनेवाले, समृद्ध बनानेवाले मानव और मानवसमाज को जन्म दो, अधिक से अधिक संख्या में जन्म दो; ऐसी मेरी अर्ज है । अंतर के अतंरतम के ओ अंतर्यामी ! अर्ज है !

उनके अंतर में आनंद का आविर्भाव होगा, उनकी आपत्ति, आह और दुर्दशा का अंत आयेगा, तब मेरे प्राणों की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहेगा । अवनि की अवस्था उस समय अनोखी होगी, तथा आपके सृष्टिसर्जन के स्वप्न का भी साफल्य होगा ।

* * * * *

७८. पूर्णता के पंथ का प्रवास

पूर्णता के पंथ का प्रवास अकेले ही करना पड़ता है, प्रवासी ! पूर्णता के पंथ का प्रवास अकेले ही करना पड़ता है ।

पुष्पों की पंक्ति पर से निकलने का सौभाग्य प्रारंभ में प्राप्त नहीं होता; उस पथ पर तो पारावार, पत्थर अथवा कंटक है, अग्नि के अनेकानेक असाधारण अंगार हैं । सुमन की स्वर्गीय सुख-सेज पर सोने का सौभाग्य आरंभ में नहीं मिलता । उसमें तो जागरण, उद्वेग और उदासीनता है ।

पीयूष के पान की प्रसादी से प्राण को प्रसन्नता पहुँचाने के मनोरथों को मार डालना पड़ता है; प्रारंभ में तो गरल के घूँट ही निगलने पड़ते हैं । सत्कार के स्वर सुनने को नहीं मिलते, और अभिनंदन अर्पण करनेवाले आराधकों का भी अभाव होता है । वहाँ तो है अपमान, अवहेलना, आपत्ति, असफलता और आक्रंदन । उनमें अमृत के आस्वाद के आनंद का अनुभव करनेवाले के लिये ही उनका आनंद है ।

जो सहयोगियों की शुभेच्छा को छोड़कर, निर्भय और लापरवाह होकर, प्राणों के प्रकाश से प्रेरित बनकर, प्रस्थान करते हैं, वही प्रवास की पूर्णाहुति करते और विजय को वरण करते हैं । ऐश्वर्य अंत में उन्हीं को मिलता है । वे यशस्वी और बड़भागी बनते हैं । परंतु प्रारंभ में तो हिम्मत, धीरज और लगन को लगाना पड़ता है; प्रवास की धुन से रग-रग को रंगना पड़ता है ।

प्रवास की पूर्णाहुति के बाद स्नेही, साथी, स्वजनों की कमी नहीं रहती; किन्तु पहले तो कमर कसनी पड़ती है, और अकेले ही वन में विहरना पड़ता है । ममता के मधु-छत्ते से मन को निवृत्त करके, दूसरे मनोरथों को महत्वहीन मानकर, जो चल पड़ते हैं, प्रवास की परिपूर्णता के लिये सब कुछ कुरबान करते हैं, उन्हें सफलता मिलती है, उनके मनोरथ पूर्ण होते हैं, पूर्णता की परी उनके लिये अपना सर्वस्व कुरबान करती है और वे उसे वरण करते हैं ।

* * * * *

७९. आशा की वाणी

आपत्ति आयें, अपमान हो, आशा के अनेकानेक किले टूट जायँ, और 'इससे तो मरण अच्छा' – ऐसी पीडाजनक अवस्था हो; तब थोडी शान्ति रखना, तेरे अंतर के अंतरतम में जलनेवाली ज्वलंत ज्योति की तरह दृष्टिपात करना, और उससे प्रकाश, प्रेम तथा प्रसन्नता की भिक्षा माँगना । तेरी माँग मिथ्या नहीं होगी, निष्फल नहीं जायेगी ।

स्वजन छोड़ दें, दिलदार धोखा दे दें, प्रशंसक प्रेम के बदले कठोर-वचन का पत्थर प्रहार करें, और पुष्पों की मनोहर माला देनेवाले अति कठोर बनकर, गाली तथा निंदा का दान दें; तब थोड़ी धीरज धारण करना, तेरे मनमंदिर की मंगलमूर्ति का ध्यान धरना, और उससे शांति और सहनशक्ति की कामना करना । तेरी कामना निरर्थक नहीं होगी, निष्फल नहीं बनेगी ।

लोग तेरी बात को समझ न सकें, तेरे अंतर की अवस्था को, अरे ! उसके अल्प आभास को भी समझ न सकें, तुझ पर दोषारोपण करें और तुझे बदनाम अथवा कलंकित करने का अवसर न चूकें; तेरी बातों को शेखचल्ली की बातों में खपाकर तुझे अपयश प्रदान करें; उस समय थोड़ी शांति रखना, प्रेमपूर्वक प्रतीक्षा करना, प्राण के भी पास रहनेवाले प्रेमसिंधु की प्रार्थना करना, और उनसे उन लोगों के अंतरों को आलोकित करने की अभिलाषा के साथ पहुँच जाना । तेरी अभिलाषा निरर्थक नहीं होगी; आकस्मिक रूप से होनेवाले अमीवर्षण से अलंकृत हुए बिना नहीं रहेगी ।

जीवन का रस जब सूख जाय, सुख के समस्त स्रोत सूख जायँ, चारों ओर चिंतारूपी चपला चमकने लगे, दुःख की दामिनी दमके, और अंधकार के अनंत आवरण आसपास आवृत हों; बेचैनी मिटे नहीं, संताप शमित न हो तथा स्वतंत्रता और सुखशांति के साम्राज्य में श्वास लेने का कोई भी उपाय मिले नहीं; उन समय भी आँख में अश्रु के साथ चिबुक पर हाथ देकर, विषादमग्न बनकर नहीं बैठना । तेरे अंतर के अंतरतम में आसीन उस रसेश्वर, सुखशांति के सम्राट के पास पहुँच जाना; उसके श्रीचरणों में तेरा शक्यातिशक्य सर्वसमर्पण करके उन्हीं का बन जाना । तेरा समर्पण बेकार नहीं होगा, नाकामयाब नहीं बनेगा, निष्फल नहीं जायेगा ।

* * * * *

८०. कवि की उक्ति

कवियों ने काम के कठोर कोप के प्रभाव में आकर, अंगो का अतिशयोक्तियुक्त वर्णन किया है, एक कवि का ऐसा कहना है । मुखमंडल की तुलना मही की मटकी अथवा सुधाकर के साथ की है; आँख को अमृत के आगार या अर्णव अथवा अंबुज के साथ, केशकलाप को सर्पिणी के साथ, हाथ की लाली को उषा-संध्या की अरुणिमा के साथ, प्यार के वचनों को बंसी के साथ, कुसमकबरी की कमनीयता को इन्द्रधनु के साथ, स्पर्श की शीतलता को चंदन के साथ, दृष्टि को अनंग के आमंत्रण के साथ और स्तनमंडल को स्वर्ण कलश के साथ – इस प्रकार उपमा देकर वर्णन करने में उन्होंने अतिशयोक्ति की है; उनका ऐसा कहना है ।

परंतु प्रेम के पावन प्रकाश को परखने में पीछे रह जाने से ही वे इस प्रकार कहते हैं । प्रेमी की दृष्टि से देखा होता, तो वे मुख को मधुरता का मधु-छत्ता मानने के बदले लार से भरा हुआ घर नहीं बताते; और कविजन ने जिसको मान की दृष्टि से देखा तथा सरस माना है, उसे निंदनीय और नीरस भी नहीं मानते ।

वैराग्य के उफान में वास्तविकता को विस्मृतकर, उन्होंने ऐसे अयोग्य वचनों का उच्चारण किया है । प्रज्ञा के परमपवित्र प्रकाश से परखा होता तो उनकी समझ में आता कि जिसे गंदकी का घर अथवा विनाशशील कर्म का फल कहने में आता है, उस अंग के पीछे परमपवित्र अविनाशी आत्मा का आलोक है; उसके आरपार, उसके अंग-अंग और रोम-रोम में उस रससम्राट का रास है; और ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से, उसकी अधिक अथवा अल्प अनुभूति होने पर ही, कविजन ऐसा कह गये हैं । प्रेम के परमपावन प्रदेश में प्रतिष्ठित होने पर वे इस प्रकार अनुभव करते या समझ सकते ।

* * * * *

८१. प्रेम

प्रेम क्या है ?

कोई कहता है, पृथ्वी का पीयूष । प्राण को पीयूष से परिप्लावित करके, परमानंद प्रदान करनेवाला पृथ्वी का पीयूष है । कोई कहता है, जीवन की ज्योति । अंधकार का अंत लाकर, अंतर को अलौकिक आलोक से सुदीप्त करनेवाली और उसे उत्तमोत्तम पथ-प्रदर्शन करनेवाली, जीवन की जाज्वल्यमान ज्योति है।

कोई कहता है, वह तो एक आशीर्वाद है । उसके बिना यह नितांत जटिल जीवन की दात्री अवनि कितनी अशांतिमय अथवा अभिशापरूप बन जाती, इसकी कल्पना तो कर लो । वह तो एक अनोखा, असाधारण, अमोलक आशीर्वाद है ।

कोई कहता है, वह तो एक ज्वाला है । वह जड़ को जला देती है, विरह की व्यथा से व्यथित करती और दुर्बल को दूर से ही डरा देती है । उसके अंदर पड़े हुए भी, न जाने कितने लंबे काल के बाद उसके महारस का रसास्वाद पाते हैं । वह तो एक जहर से भरी ज्वाला है ।

कोई उसे उपाधि कहता है, पागलपन मानता है, तो कोई उनके अनुभव को निर्बल मन की निशानीरूप समझता है । कोई उससे सावधान रहना सिखाता है, तो कोई उसे स्वर्ग-सुख की सनातन सेज कहता है ।

दूसरे के मन में कुछ भी हो, मुझे तो लगता है कि जहाँ दो रागमय हृदय एक होते हैं, वहाँ जीवन सार्थक होता है । दो अनुराग से आप्लावित, अमीमयी आँखें एक होती है, वहाँ गंगा-जमुना का संगम साकार बनता है और देवता दुन्दुभी बजाकर उत्सव करते हैं । रोम-रोम राग से रंग जाता हे, वहाँ रस के फुहारे फूटते हैं और अंग-अंग एकता के आनंदार्णव में अवगाहन करता है, वहाँ प्रभुता प्रत्यक्ष होती है, मानवता मिट जाती है । आँख से वह आलाप करता है, वाणी में वहन करता है, स्पर्श में सुधा भरता है, स्मृति द्वारा भी सुखद ठहरता है; और इस प्रकार समस्त जीवन में, उसके प्रत्येक स्तर में जादू भर देता है ।

लोग मुझसे पूछते हैं – 'प्रेम क्या है ?'

मैं उनको इसीलिये बदले में पूछता हूँ – 'प्रेम क्या नहीं है ? पीयूष, प्रेरणा, प्रकाश, पथप्रदर्शक, प्रसन्नता का पारावार, पूर्णता का परमद्वार, पवित्रता की पगदंडी और प्रत्यक्ष परमात्मा, उसमें से क्या नहीं है ? कह सकोगे, कहोगे, कि प्रेम क्या नहीं हे ?'

* * * * *

८२. अपना अनुराग

मेरे हृदय में, रोम-रोम में, रसनाके उपर, और रक्तवाहिनी के रणकार अथवा रक्तसंचार में, एक आपका ही रसमय रास हो रहा है । प्राण में भी आपके ही प्रेम का पीयूषपारावार प्रकट होकर लहरा उठा है । श्वासोश्वास में आपके सुधाभरपूर स्नेह का स्पंदन, और कलेजे में करोड़ो कामदेवता का क्रंदन, आपको आमंत्रित करता रहता है ।

आँख के अंदर आपके ही आलाप चलते हैं, और पलकों पर आपका ही प्रसन्न पलकार । समस्त शरीर में एकमात्र आपकी ही सनातन, सुखमय, स्नेह-सितार बज रही है । वाणी में आपका वीणावादन और अणु-अणु के अस्तित्व में एकमात्र आपका ही अनुरागपूर्ण आराधन हो रहा है । कान आपके श्रवण-मंगल संगीत को सुनकर संतुष्ट नहीं होते, और चरण आपके विश्वव्यापक, विश्वमोहन, चारु, सर्वोत्तम स्वरूप की परिक्रमा करते नहीं थकते ।

ऐसा अलौकिक, अवर्णनीय है अपना अनुराग । जीवन के प्रत्येक स्तर पर वह प्रसरित हो चुका है । और नम्रतापूर्वक किन्तु नेह के नशे में कहने दो कि मैंने उसे यथाशक्ति लूटा है, फिर भी वह न तो कम हुआ है, न ही उसके अनवरत आस्वादन का मेरा रस छूटा है !

* * * * *

८३. मेरे अल्प जीवन में

मेरे अल्प, अतिअल्प जीवन में अन्य सब कुछ होगा, और बढ़ता जायेगा अथवा अनुपम-जैसा बनेगा, लेकिन उसमें यदि आप न रहोगे तो मेरे प्राण की पिपासा की, मेरे कलेजे के कराल क्रंदन की, अंतर की असाधारण आरजू की, मेरे मन के मनोरथों के तृप्ति शायद ही होगी । मेरे अल्प, अतिअल्प जीवन में अन्य सब कुछ होगा, किन्तु आप नहीं रहोगे वह परिस्थिति मेरे जीवन को ज्योतिर्मय करनेवाली, जीवन बनानेवाली शायद ही होगी ।

उसमें अन्य कुछ भी नहीं होगा – होगा केवल आपका मधुमय, मादक, मंगल मुक्ति की महफिल का महारसपान करनेवाला मुख; स्वर्ग के समस्त सुख को क्षुद्र कर देनेवाला सरल, स्वादु, सरस स्मित; अमृत की अभिवर्षा करनेवाला अनुपम अंग; वीणा की विस्मृति करानेवाली वाणी; सुधा के स्वाद को निस्सार करनेवाला स्पर्श; और होगा वह प्रबल, पतितपावन प्रेम; तो मेरा शरीरधारण सफल होगा; जीवन उज्जवल बनेगा, और समस्त क्षति की पूर्ति होगी ।

इसीलिये कहता हूँ कि कोटि-कोटि काम को लज्जित करनेवाला रूप लेकर, प्रेम के प्रबल पारावार सहित मेरे जीवन में प्रकट होकर, मेरे प्राण को अपने प्राण के साथ सुग्रथित करो, और सुंदरता के स्वाद से मेरे अंतर को ऐसा संतृप्त और सुखी बना दो, जिससे आपके हृदय को भी मेरे प्रेम को पुरस्कृत करने के परिणामस्वरूप शांति मिले ।

* * * * *

८४. स्नेह का सुमन

आज के आनंदपूर्ण अवसर की खुशी की अभिव्यक्ति मुझसे किसी प्रकार नहीं की जा सकती । प्रभात के प्रथम प्रहर में ही मेरे मंगल मंदिर में आपका शुभागमन हुआ । आपके सुंदर स्वरूप की सौरभ आसपास सर्वत्र छा गयी । आपके करकमल में एक कुसुम था । उसे मेरे हाथ में रखकर आपने कहा – इस कोमल कुसुम की कलामयी कलिका की कल्पना किस कविसम्राट ने की होगी, इसकी कल्पना हो सकती है ? इसमें सुवास की सामग्री किसने भर दी और किसने रंगो की रचना की, कोई कह सकता है ? तेरी कवि के रूप में महिमा सुनकर, उसकी जानकारी के लिये, तेरे मंदिरद्वार पर आ पहुँची हूँ ।

मैंने कहा – सुमुखी ! कविसम्राट की कल्पना मुझसे नहीं हो सकती । किन्तु उसकी झाँकी करके मेरे जीवन में आज आनंद छा गया है । कविसम्राट की सुंदर सामग्री आपके अंग-अंग में आविर्भूत हो चुकी है, और आपका मनोहर मुखमंडल उसकी मधुता से मंडित हो गया है । उस कविसम्राट की कल्पना करने की आवश्यकता कहाँ है ? आपके कलेजे में ही है वह कवि । आपके कैदी के स्वांग में मैं उसका अवलोकन कर रहा हूँ । आपकी अंतरात्मा में उसका आवास है ।

मेरे शब्दों से आपका स्नेह उमड़ पड़ा । आपको उसका उचित अधिकारी मिला । मेरे मस्तक पर उस कुसुम को रखकर आपने कहा – यही है मेरी साधना और आराधना । उसे तुम्हारे सिवा कोई भी सुशोभित नहीं कर सकेगा । यह फूल नहीं, किन्तु मेरा जीवन, कवन और स्तवन है । तुम्हारे मस्तक पर विराजमान होकर वह तुम्हें मेरा जीवन, कवन और स्तवन करेगा; और तुझे उससे अभिमंडित देखकर लोग भी आश्चर्य में पडेंगे और पूछेंगे, किसने किया यह जीवन, कवन और स्तवन ? उस समय भी, मुझे क्या यही उत्तर मिलेगा ?

मैंने देखा तो आप अदृश्य बनी थीं । प्रेम से प्रसन्न होकर, मेरी सहचरी के स्वरूप में साकार बनने के शब्दोच्चार करती अदृश्य बनी थीं । आपके उस स्वरूप की पहचान आपने मुझे करा दी है, इतनी आपकी कृपा है । उसके स्वागत के लिये, मेरी समस्त स्नेहसामग्री तथा कोटि-कोटि कविता के साथ, मैं उस पावन पल से प्रतीक्षा करता खड़ा हूँ – आपके श्रीचरणों में सर्वसमर्पण करने के लिये ।

उस सुमन को मैंने अभी मेरे पास ही रख छोड़ा है – मस्तक पर नहीं, परंतु प्राण के पास, अंतर के अंतरतम में ।

* * * * *

८५. तो भी पर्याप्त होगा

मधुमक्खी मधुसंचय के लिये मनोहर, मधुपूर्ण फूलों पर मंडराती है, मधु का आस्वाद लेती है और मधु-छत्ते की रचना करके, मानव के लिये मददरूप बनती है । ऐसे ही एक अदभुत असाधारण मधु-छत्ते को देखकर मुझे आज लगा कि मेरा मन भी मधुमक्खी-जैसा तो है ?

महीमंडल की मंगलमय मुसाफिरी में मधु का महारस लेते, मैं तो मस्त बनकर विहार करता ही हूँ किन्तु मेरी कविता के कल्याणकारक मधु-छत्ते की भी रचना करता जाता हूँ । उसके आस्वाद से मानवमन अमृतमय बने ऐसी भावना है । उसके पीछे के परिश्रम, प्रेरक बल और प्रकाश की संपूर्ण समझ सबको नहीं मिल सकेगी; परंतु उसके मधु से यदि किसीका मन मधुमय होगा और मंगलमय बनेगा तो भी पर्याप्त होगा ।

तीव्र तपश्चर्या के परिणामरूप भगीरथ के द्वारा अवनि पर अवतरित गंगा अनेकों के लिये आशीर्वादरूप हो रही है और होती रहेगी, इसी प्रकार गीत की यह गौरवभरी गंगा संसार को सुखी करेगी, शांति देगी, समृद्धि प्रदान करेगी, तो भी पर्याप्त होगा ।

* * * * *



८६. प्रश्नों की परंपरा

दूसरे किसके अंतर में, मेरे प्रति उठनेवाले अनुराग का ऐसा असीम, अमृतमय अर्णव उछल रहा है, कहोगे ? किसकी आँख में इतने असाधारण अमी का आविर्भाव होता है और किसके अंतर में मुझे देखते ही प्रेम के फुहारे फूटते हैं ? अन्य किसके मन में मेरी इतनी माया और ममता है, और किसके वचन मेरे लिये प्यार की वीणा बनकर तन-मन और अंतर को झंकृत कर देता है ?

किसकी स्नेह की सरस सितार में से मेरे लिये इतनी असाधारण अनंत सुरावली छूटा करती है, किसके प्राण नितनवीन आलाप में मेरे लिये फूटा करते हैं, और अपने प्रेमधन को दिन-रात लुटाकर, दूसरा कौन मेरे जीवन-सर्वस्व को लूटता रहता है ? गरल को घोल-घोलकर मेरे लिये इस प्रकार अमृत को अनंतकाल से कौन घोंटा करता है ?

कौन मेरे जीवन की पतझड़ में वसंत की वेणु बजाकर जीवन भरता है ? कौन मेरी प्रतीचि को अपने पुण्यशाली प्रकाश से पावन करता है ? और दूसरा कौन मेरे प्राणों के परिमल से परिप्लावित पुष्प की प्रत्येक पांखुडी को प्रसन्न कर, प्रकटित बनाकर, पृथ्वी को परिमलपूर्ण करता है ? आपके सिवा दूसरा कौन मेरे कलेजे पर जादू करता है, और किसको देखकर मेरा, तथा मुझे देखकर आपके सिवा अन्य किसका, मन महोत्सव मनाता है ?

आपके सिवा दूसरा कौन मेरे बाहर, अंदर, आसपास, मेरे अणु-अणु और पृथ्वी के प्रत्येक परमाणु में रमता है ? आपके सिवा, कह सकोगे कि, कल्पना में भी, मुझे दूसरा कौन अधिक प्रिय लगता है ? किसके आसपास और किसके अंदर मेरा मन विशेष विहरता रहता है ?

* * * * *

८७. भ्रमर और फूल

फुलवाड़ी के फोरमवान फूल को निहारकर भ्रमर ने विचार किया – कितना कलात्मक फोरमयुक्त फूल है ! इस फूलकी फोरम को मेरे मन में भर लूँ और दूसरों को स्वर्गीय संगीत का दान दूँ । कविसम्राट मेरी कविता करेंगे, और स्नेहीजन मुझे स्नेह-सम्राट का बिरद प्रदान करेंगे । प्रफुल्ल पुष्प की पांखुड़ी पर प्रतिष्ठित बनूँ, उसके हृदय पर क्रीड़ा करूँ, और उसके मधु को मस्त बनकर चख लूँ !

उसके अंतर का भेद जानकर फूल बोल उठा – अरे भिक्षुक भ्रमर ! तुझमें सब कुछ है । स्वाद की रुचि है, संगीत है, और संवाद साधने की आकांक्षा भी है । परंतु समर्पण की वृत्ति के बिना वह सब अपूर्ण है । इसलिये तू चंचल है, अशांत है, अस्थिर है । आ, तुझे सहायता करूँ, तेरे श्रम में सहायक बनूँ ।

किन्तु भ्रमर ने फूल को चूस लिया । उसने सब कुछ लिया परंतु अपना दिल नहीं दिया । फूल की बात पर उसने ध्यान ही नहीं दिया ।

कविने उसे कविता में स्थान प्रदान किया; परंतु उसकी अनुराग-वृत्ति को अमर बनाने को सुयोग्य नहीं समझा ।

* * * * *

८८. गंगास्नान की भावना

गंगामाता में स्नान करनेवाले किसी किशोर को किसीने कहा – गंगा में लोग अपने स्वजन अथवा सुहृद की ओर से स्नान करते हैं; तू भी उनका स्मरण करके स्नान कर रहा है क्या ?

किशोर ने कहा – नहीं, नहीं ।

तब क्या अपने माता-पिता तथा मित्रमंडली की ओर से ?

नहीं, उनकी ओर से भी नहीं – किशोरने उत्तर दिया ।

तो क्या किसी दुर्गतिप्राप्त संबंधी की सदगति के संकल्प से यह स्नान हो रहा है ?

नहीं । ऐसे किसी संकल्प से प्रेरित होकर भी, मेरा स्नान नहीं हो रहा है ।

तो ? क्या किसी भी प्रकार के प्रयोजन के बिना, केवल अपनी ही तृप्ति के लिये स्नान हो रहा है ? वह तो बड़े से बड़ा स्वार्थ कहलायेगा ।

किशोर ने शांति से कहा – जिनकी ओर से कोई भी स्नान करनेवाला नहीं है और जिनकी सदगति के लिये प्रयत्न करने के लिये कोई तैयार नहीं है, उनको यदि पहुँच सकता हो तो, मेरे स्नान का फल पहुँचे – इसी भावना-सहित मैं स्नान कर रहा हूँ । उसके आगे अथवा पीछे ओर कोई प्रयोजन नहीं है।

* * * * *

८९. पुनीत पल की प्रतीक्षा

दुनिया के दावानल को दफना देनेवाले देवदूत के दर्शन के लिये मेरा मन मनोरथ कर रहा है, मेरे महाकवि ! उस दावानल को दूर करने के लिये, तेरी कविता तथा तेरे कर्म की कमनीय, कल्याणकारी माला लेकर आ पहुँच और उसके सौरभ से सबको संजीवन दे । उस पुनीत पल की मैं प्रतीक्षा करता हूँ ।

विश्व में विनाश और विष के विकराल वायु बहा करते हैं । सर्वसंहार की सामग्री के संग्रह होते रहते हैं; वेदना की विघातक भाँप उठा करती है; और संप-शांति की समस्त साधना मिट्टी में मिलती है । उस साधना को सफल करने के लिये, तेरी अनुरागभरी आराधना को लेकर आ पहुँच और उसके अमृतमय अभिषेक से अखिल अवनि को अमीमय कर और आशीर्वाद प्रदान कर । उस पुनीत पल की मैं प्रतीक्षा करता हूँ ।

बद्ध बंदीजन अतिबद्ध बंदीगृह से मुक्ति प्राप्त करने के लिये पुकारते हैं । शोषित शोषण से छूटने के स्वप्नों का सेवन करते हैं । आतंक से आर्त अत्याचार का अंत लाने की आराधना करते हैं । तथा तिरस्कृत प्रेम की, हड़धूत हूंफ की, अनाथ आश्रय की, दोषित दोष के परिमार्जन की भिक्षा माँग रहे हैं । उस भिक्षा की भेंट देने के लिये, तेरे भरपूर भंडार के भव्यातिभव्य अंश को एकत्रित करके आ पहुँच, और उसके अनोखे स्वाद से पीड़ित, प्यासी पृथ्वी के प्राणों को पीयूष प्रदान कर, प्रफुल्लित कर । उस पुनीत पल की मैं प्रतीक्षा करता हूँ ।

* * * * *

९०. सागर और जीवन

सागर की विशालता का विचार करके, जीवन के साथ उसकी समता करने का मेरा मन होता है । जीवन भी ऐसा ही अनंत और असीम है । उपर-उपर से देखनेवाले को वह गहन और रहस्यमय लगता है, किन्तु उसके अंदर निमज्जन करनेवालेको न जाने कितने मूल्यवान मोती मिलते हैं !

उपर से शांत, फिर भी अंदर अपार अनुराग; वेदना और व्याकुलता से विह्वल होने के बावजूद भी मर्यादा-पालन की प्रसन्नता; ज्वार और भाटे में भी संगीत के वही अनंत अविराम आलाप; अंतर में वडवानल और बाहर बवंडर के होने पर भी तितिक्षा तथा शांति की सततता; मही के मंगल के लिये सूर्य से शोषित होकर प्यार की वर्षा के रूप में बरसने की तत्परता; तथा स्त्रोत, सरिता और पानी के प्रबल प्रवाहों को प्राण में समाविष्ट करने की स्वाभाविकता; इन सबका विचार करने पर लगता है कि सर्वोत्तम जीवन का साम्य भी क्या सागर से नहीं हो सकता ?

हाँ, सर्वोत्तम जीवन का सागर क्षारयुक्त अथवा क्षार से बना हुआ नहीं, किन्तु क्षीरसागर है, उतना संवर्धन करने से वह साम्य सच्चा हो सकेगा और सर्वमान्य बन सकेगा ।

* * * * *

९१. करुणा और प्रेम की प्रसादी

आपके तपःपूत मुखमंडल के मधु को प्राप्त करने के लिये बड़े-बड़े मुनिजन भी मनोरथ करते हैं, और योगी यत्न । उसके अमृत के एक ही बिंदु का आस्वाद लेने के लिये आराधक आराधना करते हैं, तथा तपस्वी तप । आपके तपःपूत मुखमंडल की मोहिनी से मुग्ध बनकर बड़े-बड़े महान मुनिवर भी आपको अपना सर्वस्व समर्पित कर देते हैं ।

उस मुखमंडल के मधु के आस्वाद का मनोरथ मैंने भी किया है । उसके मदोन्मत्त मधु के आस्वाद को पाया भी है । उसके अमीमय आस्वाद से मेरा अंतर आनंदित हो उठा है । उसके रहस्य को हस्तगत करने के लिये प्रश्न पूछते हैं किन्तु उनको किस प्रकार कहूँ कि इस आस्वाद के आनंद की अनुभूति तप अथवा व्रत से नहीं, परंतु प्रेम के प्रताप से ही हो सकी है । उसके अमृतरस की उपलब्धि करोड़ों कोशिशों से नहीं, किन्तु केवल करुणा से हो सकी है ।

* * * * *

९२. कविता की रचना

कभी कभी मैं सोचता हूँ, कविता की कमनीय कुसुममाला की रचना किस प्रकार हो जाती है ? कुसुम को कौन उगाता है, संचित भी कौन करता है, और कौन उन्हें माला में पिरोता है ? किसी समय विचार उठता है, कविता की कमनीय, कलात्मक कुसुममाला की रचना किस प्रकार होती है ?

वह माला मेरी है, मैंने तैयार की है, ऐसा कहने में अज्ञान है; क्योंकि मेरी अपनी ही कमनीय कुसुममाला की रचना मैंने नहीं की, फिर कविता की कुसुममाला की कल्पना अथवा कला मेरी कैसे हो सकती है ? जिसने वसंत के वैभव को प्रकट किया, कोकिल को कलामय कंठ दिया, कलापी के कलेजे में मेघ के लिये प्रेमभाव भर दिया, तथा तारा-चंद्र के तेज से आकाश के अंधकार को अल्प बनाया, कमल के दल को कोमल किया, पतंग की पांख पर रंग-बिरंगे रंग भरे, सरिता के सलिल को सागर में समाविष्ट होने के लिये अभिसरण पैदा किया, और जीवन को आवेश तथा उत्साह दिया, उसीकी वह कल्पना, कला अथवा सुमनमाला है । उसीकी वजह से उसका अस्तित्व है, और उसके अंदर ही उसका अंत आता है ।

कविता की कमनीय कुसुममाला की रचना के लिये, इसीलिये कहता हूँ कि वह सवाह ही नहीं । कविता की रचना उसके लिये सहज है । उसके आँख खोलने से ही कविता का आविर्भाव होता है; श्वास लेने से ही कविता कृतार्थ होती है, शाश्वती बनती है ।

* * * * *

९३. सर्वोत्तम श्राद्ध

स्वप्न में शिशु को स्नेही का समागम हुआ ।

स्नेही ने कहा – समस्त शहर में आज से श्राद्धपक्ष का प्रारंभ हुआ है । लोग अपने-अपने परिजन, प्रेमी तथा पूज्य स्त्री-पुरुषों के लिये मिष्ट भोजन तैयार करेंगे और उन्हें अनुराग की अंजलि अर्पित करेंगे । किसी सरिता अथवा समुद्र तट पर उनकी सदगति के लिये विधिपूर्वक क्रिया करेंगे । कोई उनकी आत्मा की शांति और प्रसन्नता के लिये प्रार्थना करेंगे । तू मेरे लिये क्या करेगा ?

शिशु ने प्रेमपूर्वक प्रत्युत्तर देते हुए कहा – मेरा तो समस्त जीवन आपके श्राद्धरूप हो गया है । अनाथ, अपंग, अशिक्षित और अनादरयुक्त आत्माओं को आह्लादित करने की अथवा शांति प्रदान करने की उसमें अनवरत आराधना है; सदविचार, सदगुण, सत्कर्म की संस्थापना की सतत सुखकारक साधना है; जिनको आवश्यकता हो, उनके काम आने की कामना है; परमात्मा के परम प्रेम की प्रतिष्ठा तथा परमात्मा की पूजा है; मन और इन्द्रियों की आहुति अर्पण करने की अभीप्सा और प्रकाश की पिपासा है । वह जीवन क्या आपको शांति प्रदान नहीं कर सकेगा, प्रसन्न नहीं कर पायेगा, आपके श्रेष्ठ श्राद्धरूप नहीं बन सकेगा ?

स्नेही ने कहा – धन्य है तेरी समझशक्ति को और धन्य है तेरे सर्वोत्तम श्राद्ध को ! मैं उससे संतृप्त और शांत ही हूँ; परंतु प्रसन्नता से युक्त होकर, तुझे मेरा परिचय कराने के लिये ही, आज के पुनीत पर्व-प्रभात में, मैंने तेरे स्वप्न में प्रवेश किया है । मैं तो सचमुच संतृप्त और शांत हूँ ।

* * * * *

९४. एकता

राष्ट्रीय एकता अखिल अवनि की एकता की ओर अपने आप ले जाती है; ऐसा मानकर, राष्ट्र के नवयुवकों को कवि संदेश सुनाता है, राष्ट्र की एकता को ऐक्यबद्ध और अखंड रखने के लिये शक्यातिशक्य सब कुछ कर डालो । राष्ट्र की एकता को अतिशुद्ध रखने के लिये स्वार्थ, सत्ता-लालसा और संपत्ति के संग्रह-मनोरथ की आहुति प्रदान करो; और राष्ट्र की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने, सर्वोत्तमता की सिद्धि करने, तथा संस्कृति को सर्वोपयोगी बनाने के लिये भरसक प्रबल पुरुषार्थ करो ।

भारत भव्य है; और भव्यातिभव्य बने, ऐसी चेष्टा करो । भारत स्वतंत्र है; और स्वतंत्र ही रहे तथा समृद्ध बने, ऐसा परिश्रम करो । भारत एक, अखंड और अविभाज्य है; और एक, अखंड, अविभाज्य रहे ऐसी आराधना करो । उत्तर में हिमगिरि के सुंदर श्रृंग है; दक्षिण में, पूर्व में तथा पश्चिम में सीमारहित सागर । इतिहास और भूगोल से वह एक है; और एक है उनके बीच बसनेवाली महाप्रजा के मनोरथ तथा महाप्रयत्न । भाषा भिन्न फिर भी भावों की अभिन्नता; वेश-भूषा पृथक् परंतु प्राणों की प्रतिध्वनि की अपृथकता; एक ही माता की संतान है सब । उनके रिवाज अलग-अलग परंतु रंग एक है । एक है उनकी संस्कृति, एक है उनकी साधना, और सिद्धि भी उनकी एक है – सर्वहित अथवा सर्वमंगल ।

अखिल अवनि के सूत्रधार एक ही हैं; इस सत्य का साक्षात्कार करने के लिये राष्ट्रीय एकता की अनुभूति आवश्यक है; एसा मानकर कवि संदेश सुनाता है, राष्ट्र की एकता को ऐक्यबद्ध रखने के लिये शक्यातिशक्य सबकुछ कर डालो, ओ मेरे सुमधुर गीत ! अवनि की आत्मा की एकता का जयगान करने के लिये शक्यातिशक्य सबकुछ कर डालो !

* * * * *

९५. देवों के परमप्रिय देश !

देवों के परमप्रिय देश ! तेरा अस्तित्व अखिल अवनि के लिये आवश्यक अथवा असाधारण आशीर्वादरूप है । तेरा जन्म जगत में अकारण नहीं हुआ, किन्तु जगत को जीवन प्रदान करने के लिये हुआ है । तेरी साधना समस्त सृष्टि के लिये सुखकारक है, इसकी प्रतीति मुझे आज से नहीं, तेरे देवदुर्लभ अंतर पर आँख खोली तभी से है ।

देवों के परमप्रिय देश ! संस्कृति के सर्वोत्तम शिखर को सर करके, संसार में सुधासिंचन करने के प्रयत्न तू कर चुका । परंतु एक दिन तेरी ही शोभा विलुप्त हुई । तू बंदी बना; दुःखी और दरिद्र हुआ; संकट का शिकार बनकर क्लेशयुक्त और कलान्त हो गया । तेरा तन और मन अंधकार से आवृत हुआ और जीवन ज्योतिहीन, नीरस, निरानंद बना ।

देवों के परमप्रिय देश ! समय कहाँ स्थिर रहता है ? शीर्ण-विशीर्ण कमलदल खिल उठे, पक्षी कल्लोल कर उठे, सूर्य की सहस्त्र-सहस्त्र स्वर्ण-रश्मियाँ सर्वत्र प्रसरित हो गयीं । तेरा तिमिरपथ एक बार फिर से प्रकाशित हुआ । आज अवनि का आकर्षण बनकर तू फिर से जाग उठा है । शांति, स्वतंत्रता, सर्वोदय का सुषुप्त सनातन संदेश पुनः प्रवाहित होने लगा है । तेरा रंग बदल गया है, तेरे आराधक तुझे आलोकित करने, आनंद देने और अवनि में अनुपम बनाने के लिये आराधना करते और आकाश-पाताल एक करते हैं । जिसके लिये तेरा जन्म और अमोलक अस्तित्व है, उस हेतु की सिद्धि के सूर्योदय का अब आरंभ हुआ है; उस परमाराधना का प्रारंभ हुआ है । उसके अवलोकन से अनेकों का भ्रम और भय नष्ट हुआ है ।

देवों के परमप्रिय देश ! संयोग सानुकूल है और पूजारी प्रामाणिक । पूजा की सामग्री भी अक्षय और समय भी पर्याप्त है । प्रतिकूलता को पार कर, दुःख, दर्द, दीनता और द्वेष के दावानल को दफना कर, अग्निपरीक्षा में उत्तीर्ण होकर, सुख-समृद्धि, शांति और सर्वमंगल के सिंहासन पर आसीन हो जा, पृथ्वी को पीयूष पिला, मनुकुल को मधुमय करने के महाकार्य में लग जा ! इसीलिये तेरा जन्म हुआ है, इसीलिये तू आज तक जीवित रहा है । तेरे महाकार्य में, तेरी अनवरत अक्षय आराधना में, मेरा आशीर्वाद है, सहयोग तथा साथ है । तू सफल बनेगा – ऐसा विश्वास है ।

देवों के परमप्रिय देश !

* * * * *

९६. अंतिम संदेश

सृष्टि को संदेश सुनाने का समय है तो सुनाने दो – संप, सेवाभाव, सहकार, शांति के साथ श्वास लेने में ही मंगल है । वैर, भेद, शोषण के सिद्धांत पर अपने साम्राज्य की नींव डालनेवाली प्रजा प्रबल नहीं हो सकती । और हो जाय, तो भी, प्रेरणाप्रद अथवा अमर नहीं बन सकती । शोणित के सिंचन से समृद्ध साम्राज्य का आखिर अस्त होता है – और इस प्रकार अस्त होता है कि उसके अणु की भी किसीको उपलब्धि भी नहीं हो सकती ।

सृष्टि को संदेश सुनाने का समय है तो सुनाने दो – विप्लव नहीं किन्तु विवेकयुक्त वार्तालाप, दुश्मनी नहीं किन्तु दयाभाव, असत्य नहीं परंतु सत्य, स्वच्छंदता नहीं लेकिन समझयुक्त संयम, दानवता नहीं किन्तु मानवता, घर्षण नहीं परंतु प्रेम का वर्षण, आतंक नहीं अनुकंपा, तथा तिरस्कार नहीं प्रेम का पुरस्कार ही स्थायी ठहरता है, सफल होता है, क्रान्ति करता है, संस्कृति का सृजन करता है, और सुख-शांति, समृद्धि का अमृत अर्पित करता है । मानव की मानवता की सुरक्षा करनेवाली सच्चाई ही सर्वोत्तम ठहरती है, और दानवता की दुर्गंध का पोषण करनेवाली प्रज्ञा आखिर पतित बनती है ।

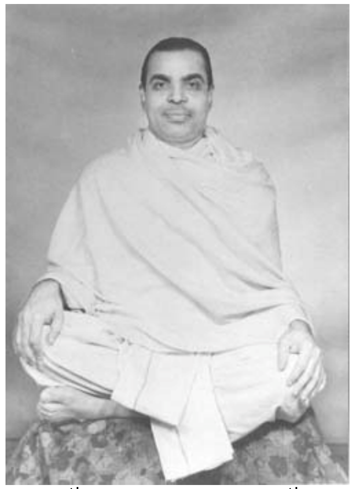
विज्ञान के विकासोन्मुख समय में सृष्टि को संदेश सुनाने का समय है तो सुनाने दो – विज्ञान मारक नहीं, किन्तु तारक बने, यह मनुष्यजाति की मनोकामना है । अनाचार-अत्याचार, दुःख-दर्द और दुर्भिक्ष के दुर्दिन से दग्ध दुनिया आशा रखती है कि उसकी आपदा का वह अंत लाकर उसकी कमीनी कंगालियत को काट डाले । अत्याचार और आतंक में ग्रस्त अवनि अपेक्षा रखती है कि उसके अंग और आत्मा को वह संहार-शस्त्रों के संशोधन और प्रयोग से अशांत न करे, अशुद्धि से न भरे, उसके रहे-सहे रस और कस को न हरे ।

सृष्टि को संदेश सुनाने का समय है तो सुनाने दो – सृष्टि शत अथवा सहस्त्र नहीं, एक है । अवनि अखंड है । उसमें एक ही परमात्मा का प्रेम-प्रकाश और परमानंद है । उसकी अनेकता में ओतप्रोत एकता को आँख के आगे से ओझल न होने दो – विसंवाद में वास करनेवाले को संवाद की शिक्षा-दीक्षा दो; और एकमेक के लिये आशीर्वादरूप बनकर अवनि को अमृतमय बनाने के लिये सबकी साधना, समझ, संपत्ति, शक्ति, सामग्री और सबके समय का समर्पण हो !

* * * * *

(समाप्त)

About the Author



(Aug 15th 1921 - Mar 18th 1984)

Author of more than hundred books, Mahatma Shri Yogeshwarji was a self-realized saint, an accomplished yogi, an excellent orator and an above par spiritual poet and writer. In a fascinating life spanning more than six decades, Shri Yogeshwarji trod the path of spiritual attainments single handedly. He dared to dream of attaining heights of spirituality without guidance of any embodied spiritual master and thus defied popular myths prevalent among the seekers of spiritual path. He blazed an illuminating path for others to follow.

Born to a poor Brahmin farmer in a small village near Ahmedabad in Gujarat, Shri Yogeshwarji lost his father at the tender age of 9. He was taken to a Hindu orphanage in Mumbai for further studies. However, God's wish was to make him pursue a different path. He left for Himalayas early in his youth at the age of 20 and thereafter made holy Himalayas his abode for penance for nearly two decades. During his stay there, he came across a number of known and unknown saints and sages. He was blessed by divine visions of many deities and highly illumined souls like Raman Maharshi and Sai Baba of Shirdi among others.

Yogeshwarji's experiences in spirituality were vivid, unusual and amazing. He succeeded in scaling the highest peak of self-realization resulting in direct communication with the Almighty. He was also blessed with extraordinary spiritual powers (siddhis) illustrated in ancient Yogic scriptures. After achieving full grace of Mother Goddess, he started to share the nectar for the benefit of mankind. He traveled to various parts of India as well as abroad on spiritual mission where he received enthusiastic welcome.

He wrote more than 100 books on various subjects and explored all form of literature. His autobiography '<u>Prakash Na Panthe</u>' - much sought after by spiritual aspirants worldwide, is translated in Hindi as well as English. A large collection of his lectures in form of audio cassettes are also available.

For more than thirty years, Yogeshwarji kept his mother (Mataji Jyotirmayi) with him. Yogeshwarji was known among saints of his time as Matrubhakta Mahatma. Shri Yogeshwarji left his physical body on March 18th 1984, while delivering a lecture at Laxminarayan Temple, Kandivali in Mumbai.

Shri Yogeshwarji left behind him a spiritual legacy in the form of Maa Sarveshwari. It has been ages since we have come across a saint of Yogeshwarji's caliber and magnitude. His manifestation will continue to provide divine inspiration for the generations to come.

*

શ્રી યોગેશ્વરજીનું સાહિત્યિક પ્રદાન

આત્મકથા પ્રકાશના પંથે ▪ પ્રકાશના પંથે (સંક્ષિપ્ત) ▪ **प्रकाश पथ का यात्री** ▪ Steps towards Eternity

અનુવાદ રમણ મહર્ષિની સુખદ સંનિધિમાં ▪ ભારતના આધ્યાત્મિક રહસ્યની ખોજમાં ▪ હિમગીરીમાં યોગી

અનુભવો દિવ્ય અનુભૂતિઓ ▪ શ્રેય અને સાધના ▪ **श्रेय और साधना**

કાવ્યો અક્ષત ▪ અનંત સૂર ▪ બિંદુ ▪ ગાંધી ગૌરવ ▪ સાંઈ સંગીત ▪ સનાતન સંગીત ▪ તર્પણ ▪ Tunes unto the infinite

કાવ્યાનુવાદ ચંડીપાઠ ▪ રામચરિતમાનસ ▪ રામાયણ દર્શન ▪ સરળ ગીતા ▪ શિવમહિમ્નસ્તોત્ર ▪ શિવ પાર્વતી પ્રસંગ ▪ સુંદર કાંડ ▪ વિષ્ણુસહસ્ત્રનામ

ગીતો ફૂલવાડી ▪ હિમાલય અમારો ▪ રશ્મિ ▪ સ્મૃતિ

ચિંતન બ્રહ્મસૂત્ર ▪ ગીતા દર્શન ▪ ગીતાનું સંગીત ▪ ગીતા સંદેશ ▪ ઈશાવાસ્યોપનિષદ ▪ ઉપનિષદનું અમૃત ▪ ઉપનિષદનો અમર વારસો ▪ પ્રેમભક્તિની પગદંડી ▪ શ્રીમદ્ ભાગવત ▪ યોગ દર્શન

લેખ આરાધના ▪ આત્માની અમૃતવાણી ▪ ચિંતામણી ▪ ધ્યાન સાધના ▪ Essence of Gita ▪ ગીતા તત્વ વિચાર ▪ જીવન વિકાસના સોપાન ▪ પ્રભુ પ્રાપ્તિનો પંથ ▪ પ્રાર્થના સાધના છે ▪ સાધના ▪ તીર્થયાત્રા ▪ યોગમિમાંસા

ભજનો આલાપ ▪ આરતી ▪ અભિપ્સા ▪ દ્યુતિ ▪ પ્રસાદ ▪ સ્વર્ગીય સૂર ▪ તુલસીદલ

જીવનચરિત્ર ભગવાન રમણ મહર્ષિ - જીવન અને કાર્ય

પ્રવચનો અમર જીવન ▪ કર્મયોગ ▪ પાતંજલ યોગદર્શન ▪ આત્મસંયમયોગ

પ્રસંગો ધૂપ સુગંધ ▪ કળીમાંથી ફૂલ ▪ મહાભારતના મોતી ▪ પરબનાં પાણી ▪ સંત સમાગમ ▪ સત્સંગ ▪ સંત સૌરભ

પત્રો હિમાલયનાં પત્રો

પ્રશ્નોત્તરી અધ્યાત્મનો અર્ક ▪ ધર્મનો મર્મ ▪ ધર્મનો સાક્ષાત્કાર ▪ ઈશ્વર દર્શન

નવલકથા આગ ▪ અગ્નિપરીક્ષા ▪ ગોપીપ્રેમ ▪ કાદવ અને કમળ ▪ કાયાકલ્પ ▪ કૃષ્ણ રુકમિણી ▪ પરભવની પ્રીત ▪ રક્ષા ▪ સમર્પણ ▪ પરિક્ષિત ▪ પરિમલ ▪ પ્રીત પુરાની ▪ પ્રેમ અને વાસના ▪ રસેશ્વરી ▪ ઉત્તરપથ ▪ યોગાનુયોગ

સુવાક્યો પરબડી ▪ સર્વમંગલ

વાર્તાઓ રોશની

*